रवीन्द्र की कहानियाँ

—★—

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों में अनवद्य कला-शिल्प, गठन कौशल, आश्चर्यजनक वैचित्र्य-प्रसार, काव्य-सौन्दर्य एवं औपन्यासिक चरित्र-विश्लेषण का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। बंगाली जीवन की संकीर्ण परिधि एवं अन्तर्निगूढ़ भाव गम्भीरता के साथ उनका एक सहज सामञ्जस्य है। वे हमारे यंत्रबद्ध, वैचित्र्यहीन जीवन में जिस प्रचुर रसधारा एवं सूक्ष्म अनुभूतिमय सौन्दर्य को आविष्कृत करती हैं, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। इन प्रेम-कहानियों में लेखक, कवि एवं मनस्तत्त्ववेत्ता की दृष्टि, जन जीवन के ऊपर अपनी दुर्वार शक्ति का एक निगूढ़ प्रभाव छोड़ जाती है। इनमें एक युग की समाप्ति तथा दूसरे का नवारम्भ है।

प्रस्तुत संग्रह में रवीन्द्र की कतिपय श्रेष्ठ एवं सुप्रसिद्ध कहानियाँ संकलित की गई हैं, जो मूल बँगला से शब्दशः अनूदित हैं। अब तक के सभी अनुवादों में यह सर्वोत्तम तथा प्रामाणिक है।

रवीन्द्र-कथा-माला-संख्या ५.

क्षुधित पाषाण

(मूल-बँगला से अनूदित रवीन्द्र की कहानियाँ)

लेखक :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रभात प्रकाशन

प्रकाशक :

प्रभात प्रकाशन,

मथुरा

अनुवादक :

राजेश दीक्षित

प्रथम संस्करण :

१९५८

मुद्रक :

सुभाष प्रिन्टिंग प्रेस,

मथुरा

मूल्य :

दो रुपया

दो शब्द

"रविबाबू का काव्य चाहे चिरंजीवी न रहे, परन्तु उनकी कहानियाँ, उन्हें निश्चित रूप से अमर-कीर्ति प्रदान करेंगी"—एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज-समालोचक के इस कथन में रञ्चमात्र अतिशयोक्ति नहीं है।

रविबाबू कवि के रूप में विश्व-प्रसिद्ध हुए, उपन्यास-कार के रूप में भी उन्होंने यथेष्ट ख्याति अर्जित की, परन्तु वास्तविकता यह है कि कहानी-कार के रूप में उन्होंने जो सफलता प्राप्त की है; वह सबसे बढ़कर, अत्यन्त अद्भुत है। कला-शिल्प, गठन-कौशल, शब्द-सौन्दर्य, भाव-पटुता, अभिव्यक्ति की सरसता एवं सूक्ष्म-तात्त्विकता—सभी दृष्टियों से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियाँ अनुपम, सर्वोत्कृष्ट तथा अजर-अमर हैं। रवीन्द्र जैसा सूक्ष्म-दर्शी मनोवैज्ञानिक कहानी-कार सम्भवतः सम्पूर्ण एशिया में अब तक कोई नहीं हुआ। कथा-साहित्य में जिसने रवीन्द्र की कहानी नहीं पढ़ीं, उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है।

प्रस्तुत संग्रह में रविबाबू की बारह सुप्रसिद्ध कहानियाँ हैं। सभी का अनुवाद मूल-बँगला से अक्षरशः किया गया है। मूल भावों एवं शिल्प-सौन्दर्य की रक्षा के लिए संस्कृत-निष्ठा को नहीं त्यागा जा सका, परन्तु इससे अनुवाद की श्री-वृद्धि ही हुई है—यह पढ़ कर ही जाना जा सकेगा।

मथुरा-प्रवास
पौष-पूर्णिमा, सं० २०१४ वि.

—राजेश दीक्षित

कथा-सूची

★

क्षुधित पाषाण

मैं और मेरे रिश्तेदार पूजा की छुट्टियों में देश-भ्रमण करके कलकत्ता लौट रहे थे, इसी समय रेलगाड़ी में एक सज्जन से साक्षात्कार हुआ। उनकी वेश-भूषा को देखकर पहले तो उन्हें पश्चिमी देश का मुसलमान समझने का भ्रम हुआ, फिर उनकी बातचीत सुनकर और भी भूल-भुलैयाँ में पड़ गया। संसार के सभी विषयों पर वे इस प्रकार बातचीत करने लगे जैसे विधाता ने उनसे पहले परामर्श लेकर ही सब काम किए हों। सम्पूर्ण संसार में भीतर-ही-भीतर कैसी-कैसी बिना-देखी, बिना-सुनी घटनाएँ घट रहीं हैं, रूसी लोग कितने आगे बढते चले जारहे हैं, अँग्रेज लोग किस प्रकार के खुफिया इरादे बाँध रहे हैं, देशी राजाओं के बीच कैसी एक खिचड़ी पक उठी है, इन सब बातों को बिलकुल न जानकर हम लोग किस तरह पूर्ण निश्चिन्त हैं? हमारे नव-परिचित वार्तालापी सज्जन ने कुछ हँसते हुए कहा—

"There happen more things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your news papers" (अर्थात् होरेशियो, तुम्हारे इन समाचार-पत्रों में छपने वाले समाचारों से कहीं अधिक बातें पृथ्वी और आकाश पर हुआ करती हैं ।) हम लोग पहले-पहल घर छोड़कर बाहर निकले थे, इसलिए उनकी बातचीत को सुनकर अवाक् रह गये । वे सज्जन साधारण विषयों पर भी कभी-कभी विज्ञान की बात करते, कभी वेदों की व्याख्या करते, कभी अचानक ही फारसी की पुस्तकों का हवाला दे बैठते थे । विज्ञान, वेद एवं फारसी भाषा में हम लोगों का कोई दखल नहीं था, अस्तु उनके प्रति हमारी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । यही क्यों, हमारे एक थियोसोफिस्ट रिश्तेदार के मन में यह विश्वास होगया कि हमारे इस सहयात्री का किसी अलौकिक शक्ति से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य है, कोई एक अपूर्व मैगनेटिज्म अथवा दैवी-शक्ति अथवा सूक्ष्म-शरीर अथवा इसी प्रकार की कोई अन्य वस्तु । वे इस असाधारण व्यक्ति की समस्त साधारण बातों को भी भक्ति-विह्वल मुग्धभाव से सुन रहे थे एवं चुपचाप नोट भी कर रहे थे । मैंने अनुभव किया, असाधारण व्यक्ति भी भीतर-ही-भीतर इस बात को समझ रहा था एवं कुछ प्रसन्न भी होरहा था । जब गाड़ी आकर जंकशन पर खड़ी हुई तो हम लोग दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा में वेटिङ्ग रूम में जा ठहरे, उस समय रात के साढ़े दस बज रहे थे । 'रास्ते में कोई गड़बड़ी हो जाने से गाड़ी बहुत देर बाद आयेगी' ऐसा सुना । मैंने इस बीच टेबुल के ऊपर बिछौना बिछाकर सोना स्थिर किया । इसी बीच वे असामान्य व्यक्ति निम्न लिखित कहानी छेड़ बैठे । उस रात हम लोगों को फिर नींद नहीं आई ।

"राज्य-संचालन के सम्बन्ध में दो एक बातों में मतभेद हो जाने पर मैं जूनागढ़ का काम छोड़कर हैदराबाद में जिस समय निजाम-सरकार में प्रविष्ट हुआ, उस समय मुझे अल्प-वयस्क और मजबूत-व्यक्ति देखकर

पहले ही भड़ौंच में रुई की चुङ्गी वसूल करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। भड़ौंच बड़ी रमणीक जगह है। निर्जन पहाड़ों के नीचे बड़े जङ्गलों के भीतर होती हुई शुस्ता नदी (संस्कृत की स्वच्छतोया का अपभ्रंश) पत्थर की छोटी-छोटी चट्टानों के मार्ग पर चतुर-नर्तकी की भाँति पग-पग पर तिरछी होती हुई द्रुत-नृत्य करती हुई चली गई है। ठीक उसी नदी की धार पर, पत्थर से बने हुए डेढ़ सौ सीढ़ियों वाले बहुत ऊँचे घाट पर, एक श्वेत-पत्थर का महल पर्वत की तलहटी में अकेला खड़ा हुआ है—पास में कहीं भी बस्ती नहीं है। भड़ौंच की रुई की हाट और गाँव यहाँ से दूर है।

प्राय: ढाई सौ वर्ष पूर्व शाह महमूद द्वितीय ने अपने भोग-विलास के लिए महल को इस निर्जन-स्थान में बनवाया था। उस समय स्नान-गृह के फव्वारे के मुख से गुलाबजल की धाराएं निकला करती थीं एवं उन धाराओं द्वारा शीतल निर्जन-घर में, संगमरमर से बने स्निग्ध सिंहासन पर बैठकर, अपने कोमल, नंगे पाद-पल्लवों को जलाशय की निर्मल जलराशि में फैलाकर, तरुणी ईरानी-स्त्रियाँ स्नान से पहले केशों को खोलकर, गोद में सितार लिए, अंगूरी लताओं की तरह गजल गाया करती थीं।

अब वे फव्वारे नहीं चलते, वे गाने भी नहीं हैं, सफेद पत्थरों के ऊपर शुभ्र-चरणों का आघात भी नहीं पड़ता—इस समय यहाँ मेरे समान एकांतवास से पीड़ित, संगिनी-हीन महसूल-कलक्टरों का अत्यन्त वृहत् एवं अत्यन्त शून्य निवास-स्थान है। परन्तु, आफिस के वृद्ध किरानी क़रीमखाँ ने मुझसे इस महल के लिए बारम्बार मना किया था। कहा था—"इच्छा हो तो दिन में भले ही रहो, परन्तु कभी भी यहाँ रात मत बिताना।" मैंने यह बात हँसी में उड़ादी। नौकरों ने कहा—"वे लोग संध्या तक काम करेंगे परन्तु, रात में इस जगह नहीं रहेंगे।" मैं बोला—"तथास्तु।" यह मकान ऐसा बदनाम था कि रात में चोर भी यहाँ आने का साहस नहीं करते थे।

पहले-पहल आकर इस परित्यक्त पाषाण-प्रासाद की निर्जनता मेरी छाती के ऊपर जैसे एक भयङ्कर बोझ की तरह चिपक कर बैठ गई, मैं जहाँ तक हो सकता बाहर ही रहकर, खूब काम-काज करके, रात को घर में लौट कर थके हुए शरीर से सो जाता।

परन्तु एक सप्ताह भी नहीं बीत पाया था कि उस मकान का एक अपूर्व नशा मेरे ऊपर क्रमश: आक्रमण कर जोर पकड़ने लगा। मेरी उस अवस्था का वर्णन करना भी कठिन है और उस बात पर लोगों को विश्वास कराना भी कठिन है। पूरा मकान एक सजीव-पदार्थ के समान मुझे अपने उदरस्थ मोह-रस से थोड़ा-थोड़ा जैसे जीर्ण (दुर्बल) करने लगा।

जान पड़ता था इस मकान में पदार्पण करते ही यह प्रक्रिया आरम्भ होगई थी—परन्तु मैंने जिस दिन सचेतनभाव से पहले-पहल इसका सूत्रपात अनुभव किया, उस दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है।

उस समय ग्रीष्मकाल के आरम्भ में बाजार मन्दा था; मेरे हाथ में कोई काम नहीं था सूर्यास्त से कुछ पहले ही मैं उस नदी-तटवर्ती घाट के निचले हिस्से में एक आराम-कुर्सी लेकर बैठा हुआ था। उस समय शुस्ता नदी शीर्ण (पतली) हो आई थी; उस पार का बहुत कुछ बालू-तट अपराह्न की आभा से रंगीन हो उठा था, इस पार घाट की सीढ़ियों के नीचे स्वच्छ कम गहरे जल की तलहटी में कंकड़ियाँ झिक्-झिक् कर रहीं थीं। उस दिन किसी ओर भी हवा नहीं थी। समीपवर्त्ती पहाड़ पर वनतुलसी, पुदीना और सौंफ के जंगल से एक घनी सुगन्ध ने उठकर स्थिर आकाश को बोझिल कर रक्खा था।

सूर्य जिस समय पर्वत-शिखर के अन्तराल में अवतीर्ण हुआ (छिपने लगा), उसी समय दिन की नाट्यशाला पर एक दीर्घ छाया-यवनिका पड़ गई—यहाँ पर पर्वत की आड़ होने से सूर्यास्त के समय

प्रकाश और अन्धकार का सम्मिलन अधिक देर तक स्थायी नहीं होता। घोड़े पर चढ़ कर एक बार घूम फिर-आने की सोच कर उठने-उठने के लिए कर रहा था; इसी समय सीढ़ियों पर पावों का शब्द सुनाई पड़ा। पीछे फिर कर देखा—कोई नहीं था।

इन्द्रियों का भ्रम समझ कर पुनः फिर कर बैठते ही, एक बार अनेकों पाँवों का शब्द सुनाई दिया—जैसे अनेकों लोग मिलकर झुण्ड बाँधे हुए उतरते चले आरहे हों। वह शब्द कुछ भय सहित एक अपूर्व पुलक मिश्रित हो मेरे सर्वाङ्ग को परिपूर्ण कर उठा। यद्यपि मेरे सम्मुख कोई मूर्त्ति नहीं थी, तथापि स्पष्ट प्रत्यक्ष के समान मन को लगा कि इस ग्रीष्म-कालीन सन्ध्या-समय में प्रमोद-चञ्चला स्त्रियों का एक दल शुस्ता के जल में स्नान करने के लिए उतर रहा है। यद्यपि उस सन्ध्याकाल में निस्तब्ध पर्वत के नीचे, नदी के तीर पर, निर्जन-प्रसाद में कसा भी तनिक भी शब्द नहीं था, तथापि मैंने जैसे स्पष्ट सुन पाया कि निर्झर की शतधाराओं के समान सकौतुक कलहास्य सहित परस्पर शीघ्रतापूर्वक दौड़ती हुई मेरी बगल में होकर स्नानार्थिनियाँ (स्नान करने को आई हुई स्त्रियाँ) चली गई। मुझे जैसे देखा ही नहीं। वे सब जिस प्रकार मेरे लिए अदृश्य थीं, मैं भी जैसे उसी प्रकार उनके लिए अदृश्य था। नदी पूर्ववत् स्थिर थी, परन्तु मुझे स्पष्ट जान पड़ा, स्वच्छतोया की कम-गहरी जल-धारा अनेकों वलय-झंकृत भुजाओं के विक्षेप से विक्षुब्ध हो उठी है, हँसती-हँसती सखियाँ एक दूसरे के शरीर पर पानी फेंक कर मार रहीं हैं एवं तैरने वालियों के पदाघात से जलबिन्दुराशि मोतियों के समान आकाश में छिटकी पड़ रही है।

मेरी छाती में एक प्रकार का कम्पन होने लगा, वह उत्तेजना भय की थी, आनन्द की थी अथवा कौतूहल की थी—ठीक नहीं कह सकता। बड़ी इच्छा होने लगी—अच्छी तरह देखूँ, परन्तु सामने देखने को कुछ नहीं था; मन में सोचा—अच्छी तरह कान लगा कर उनकी

सब बातों को स्पष्ट सुना जा सकेगा—परन्तु एकाग्र-चित्त से कान लगाने पर केवल वन का झिल्लीरव ही सुनाई दिया। मनको लगा—ढाई सौ वर्ष की कृष्णवर्ण यवनिका ठीक मेरे सामने हिल रही है, डरते-डरते एक कोना उठाकर भीतर दृष्टिपात किया—उस जगह बड़ी सभा बैठी थी, परन्तु गहरे अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता था।

अचानक उमस को हटा, हू-हू करके एक हवा चलाकर—शुस्ता का स्थिर जल-तल देखते-देखते अप्सरा के घुँघराले केशों के समान संकुचित हो उठा एवं सन्ध्या की छाया से आच्छन्न सम्पूर्ण वन-भूमि एक क्षण में एक साथ ही मर्मर-ध्वनि करके जैसे दुःस्वप्न से जाग उठी। स्वप्न कहो अथवा सत्य कहो, ढाई सौ वर्ष के अतीत-क्षेत्र से प्रतिफलित होकर मेरे सम्मुख जो एक अदृश्य मरीचिका अवतीर्ण हुई थी, वह आश्चर्य के बीच अन्तर्धान होगई। जो मायाविनियाँ मेरे शरीर के ऊपर होकर देह-हीन द्रुत-पदों से, शब्द-हीन उच्चकलहास्य फैलाती हुई, शुस्ता के जल ऊपर से कूद पड़ी थीं, वे सब भीगे हुए अञ्चलों से पानी निचोड़ती हुई, मेरे पास से लौट कर नहीं गईं। वायु जिस प्रकार गन्ध को उड़ा ले जाती है, वसन्त के एक निःश्वास में वे सब उसी प्रकार से उड़ कर चली गईं।

उस समय मुझे बड़ी आशङ्का हुई कि अचानक लगता है—अकेला पाकर कविता देवी मेरे कन्धे पर आकर तो नहीं सवार होगईं। मैं विचारा रुई की चुङ्गी चुकवाते हुए मेहनत का खाता हूँ, सर्वनाशिनी, इस बार लगता है, मेरा मस्तक कटवाने को आई है। सोचा—अच्छी तरह भोजन करना होगा, खाली पेट को ही सब तरह की दूरारोग्य (स्वास्थ्य से परे) बीमारियाँ आकर पकड़ लेती है। अपने रसोइये को बुलाकर प्रचुर घी में पकाये गये मसाले-सुगन्धि से युक्त मुगलाई खाना बनाने का हुक्म कर दिया।

दूसरे दिन सबेरे सम्पूर्ण व्यापार (सारी बातें) अत्यन्त हास्य-

झनक-सी जान पड़ीं। प्रसन्न मन से साहब की भाँति मखमली टोपी पहन कर, अपने ही हाथ से गाड़ी हाँकता हुआ, गड़-गड़ शब्द करता हुआ, अपने नित्य के काम पर चला गया। उस दिन त्रैमासिक-रिपोर्ट लिखने का दिन होने के कारण देर से घर लौटने की बात थी। परन्तु सन्ध्या होते-न-होते कोई मुझे मकान की ओर खींचने लगा। कौन खींचने लगा सो नहीं कह सकता; परन्तु मनको लगा, और विलम्ब करना उचित नहीं है। मन को लगा—सभी बैठे हैं। रिपोर्ट को अधूरा छोड़कर, माथे पर मखमली टोपी पहिन उस सन्ध्या-धूसर वृक्षों की छाया से सघन निर्जन मार्ग को अपने रथ के पहियों के शब्द से चकित करता हुआ, उस अँधेरे शैलान्तवर्त्ती निस्तब्ध प्रकाण्ड प्रासाद में पहुँच कर ऊपर चढ़ने लगा।

सीढ़ियों के ऊपर सामने वाला कमरा बहुत बड़ा था। उसने बहुत बड़े-बड़े खम्भों के ऊपर चित्रकारी-युक्त मेहराबदार विस्तीर्ण छत को धारण कर रक्खा था। यह विशाल घर अपने में विपुल शून्यता भरे हुए दिन-रात 'गम्-गम्' (भाँय-भाँय) करता रहता था। उस दिन सन्ध्या हो जाने पर भी दीपक नहीं जलाया गया था। दरवाजा खोलकर मैंने उस विशाल घर में जैसे ही प्रवेश किया, मेरे मन को लगा—घर के बीच जैसे एक भारी उपद्रव मचा हुआ है—जैसे अचानक ही सभा भङ्ग करके चारों ओर के दरवाजे, जंगले, घर के मार्ग, बरामदे में होकर कौन किस ओर भाग गया, उसका ठिकाना नहीं। मैं कहीं भी कुछ भी न देख पाकर, अवाक् हो खड़ा रहा। शरीर एक प्रकार के आवेश से रोमाञ्चित हो उठा। जैसे बहुत दिनों की लुप्तावशिष्ट (बची-खुची) केश-तैल और इत्रों की मृदु-गन्ध मेरी नाक में प्रवेश करने लगी। मैं उस दीप-हीन, जन-हीन विशाल घर की प्राचीन प्रस्तर-स्तम्भ-श्रेणी के बीच खड़े होकर सुनने लगा—झर-झर शब्द करता हुआ फव्वारों का जल श्वेत पत्थरों के ऊपर आकर गिर रहा है, सितार किस स्वर में बज रहे हैं—समझ नहीं पाया, कहीं से स्वर्णाभूषणों की झनकार, कहीं से नूपुरों

को क्वरगन, कहीं से ताँबे के विशाल घण्टे का समय-सूचक शब्द, बहुत दूर से नौबत की आवाज, वायु से हिलते हुए झाड़ों के लटकनों की टुन्-टुन् ध्वनि, बरामदे से पिंजड़े में बन्द बुलबुलों की के गीत, बगीचे से पालतू सारसों की आवाज—मेरे चारों ओर एक प्रेत-लोक की रागिनी की सृष्टि करने लगे।

मुझे जैसे एक मोह उपस्थित हो गया, मन को लगा—यह अस्पृश्य, अगम्य, अवास्तव व्यापार ही संसार में एक मात्र सत्य है, और सब मिथ्या मरीचिका है। मैं, जो मैं हूँ—अर्थात् मैं जो श्रीयुक्त अमुक, अमुक का ज्येष्ठ पुत्र, रुई का महसूल इकट्ठा कर साढ़े चार सौ रुपया वेतन पाता हूँ मैं जो मखमली टोपी एवं बढ़िया कुर्त्ता पहिनकर टमटम् हाँकता हुआ आफिस करने को जाता हूँ—यह सब मेरे समीप जैसे अद्भुत हास्यजनक, अमूलक झूँठी-बात सी अनुभव होने लगीं और मैं उस विशाल निस्तब्ध अँधेरे घर के बीच में खड़ा होकर हाः हाः करके हँस उठा।

उसी समय मेरे मुसलमान नौकर ने जलते हुए किरासिन तेल के लैम्प को हाथ में लेकर घर के भीतर प्रवेश किया। उसने मुझे पागल समझा या नहीं—नहीं जानता, परन्तु उसी समय मुझे याद आया कि मैं अमुकचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुक्त अमुकनाथ हूँ; यह भी मन में सोचा कि संसार के भीतर अथवा बाहर कहीं भी अमूर्त्त फव्वारा सदैव झरता है और अदृश्य अँगुलियों के आघात से किसी माया-सितार की अनन्त-रागिनी ध्वनित होती है या नहीं—इसे तो हमारे महाकवि और कवि-वर ही कह सकते हैं, परन्तु यह बात निश्चित सत्य है कि मैं भड़ौंच के बाजार में रुई का महसूल अदा करवाके महीने में साढ़े चार सौ रुपया वेतन लेकर रहता हूँ। उस समय फिर अपने पूर्वक्षरण के अद्भुत मोह का स्मरण कर, किरासिन तेल के प्रदीप्त लैम्प-टेबिल के पास समाचार-पत्र ले, कौतुकपूर्वक हँसने लगा।

समाचार-पत्र पढ़कर एवं मुगलाई खाना खाकर एक छोटे से कोने वाले घर में दीपक बुझाकर बिछौने पर जाकर शयन किया। मेरे सामने वाले खुले जंगले के भीतर-से, अन्धकार से पूर्ण अरावली पर्वत की चोटी से एक अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र सहस्रकोटि योजन दूर आकाश से, उस बहुत छोटी कैम्प-खाट के ऊपर श्रीयुक्त महसूल-कलक्टर को टकटकी बाँधकर निरीक्षण करते हुए देख रहा था—इससे मैं विस्मय और कौतुक का अनुभव करता-करता किस समय सो गया—नहीं कह सकता। सहसा एक समय सिहर कर जग उठा—घर में कोई शब्द हुआ हो, ऐसा नहीं था, किसी आदमी ने प्रवेश किया हो—वह भी देखने को नहीं मिला। अँधेरे पर्वत के ऊपर से निर्निमेष नक्षत्र अस्तप्रायः हो गया था एवं कृष्णपक्ष का क्षीण-चन्द्रालोक (प्रकाश) अनधिकार-संकुचित-म्लानभाव से मेरी खिड़की के मार्ग द्वारा प्रवेश कर रहा था।

किसी आदमी को नहीं देख पाया। तो भी जैसे मेरे मन को स्पष्ट लगा, कोई एक व्यक्ति मुझे धीरे धीरे ठेलरहा है। मेरे जग उठते ही वह कोई बात न कह कर केवल जैसे अपनी अंगूठियों से चमकती हुई पाँच उङ्गलियों के इशारे से अत्यन्त सावधानी पूर्वक अपने पीछे-पीछे आने का आदेश कर उठा।

मैं बहुत चुपचाप उठा। यद्यपि उस शतकक्षप्रकोष्ठमय (सैकड़ों कमरों वाले) प्रकाण्ड शून्यतामय, निद्रित ध्वनि एवं सजग प्रतिध्वनिमय विशाल प्रासाद में मुझे छोड़कर और कोई भी आदमी नहीं था, तो भी पग-पग पर भय होने लगा—कहीं कोई जग न जाय। महल के अधिकांश कमरे बन्द थे एवं उन सब घरों में मैं कभी नहीं जाता था।

उस रात में निःशब्द पाँव रखते हुए तथा साँस साधे उस अदृश्य आह्वान रूपिणी का अनुसरण करता हुआ मैं कहाँ होता हुआ कहाँ जा रहा था—आज उसे स्पष्ट रूप से नहीं कह सकता। कितने संकीर्ण अँधेरे मार्ग, कितने बड़े बरामदे, कितने निस्तब्ध अत्यन्त विशाल सभा

गृह, कितना वायु-रुद्ध छोटी गुप्त-कोठियों से पार होकर जाने लगा, उसका ठिकाना नहीं ।

अपनी अदृश्य दूती को यद्यपि आँखों से देख नहीं पा रहा था, तो भी उसकी मूर्ति मेरे मन से अगोचर नहीं थी । अरब-रमणी, ढीली आस्तीन के भीतर से श्वेत प्रस्तर-रचित जैसा कठोर-गोल हाथ देखा जा सकता था, टोपी से लेकर मुँह के ऊपर एक महीन वस्त्र का आवरण पड़ा हुआ था, कमर बन्द में एक टेढ़ी छुरी बँध रही थी ।

मेरे मन को लगा, *अरबोपन्यास (अलिफ लैला)* की एकाधिक सहस्र-रजनी (हजार रातें) में से एक रात्रि आज उपन्यास लोक से उड़कर आगई है । मैं जैसे अंधेरी रात में, निद्रा-मग्न बगदाद के बुझे हुए दीपकों वाले संकीर्ण मार्ग पर किसी एक संकटपूर्ण अभिसार के लिए यात्रा कर रहा हूँ ।

अन्त में मेरी दूती एक गहरे नीले पर्दे के सम्मुख अचानक ही रुक कर खड़ी हो, जैसे नीचे की ओर अंगुलिनिर्देश करती हुई दिखाने लगी । नीचे कुछ नहीं था, परन्तु भय से मेरे वक्ष-स्थल का रक्त स्तम्भित हो गया । मैंने अनुभव किया, उस पर्दे के सम्मुख पृथ्वीतल पर कीमखाब की पोशाक पहने, एक भीषण हब्शी खोजा गोद के ऊपर खुली हुई तलवार रक्खे, दोनों पाँव फैलाए, बैठा हुआ ऊँघ रहा है । दूती ने धीरे से उसके दोनों पाँवों को लाँघते हुए पर्दे के एक कोने को उठाकर पकड़ लिया ।

भीतर से एक फारसी गलीचा बिछा हुआ कमरा थोड़ा सा दिखाई दिया । तख्त के ऊपर कौन बैठा है—नहीं देखा जा सका, केवल जाफरानी रङ्ग के ढीले पायजामे का निचला भाग जरी की चप्पलें पहने हुए दो सुन्दर चरण मखमली आसन के ऊपर अलसभाव से रक्खे हुए थे—यही देख पाया । फर्श के एक ओर एक नीलाभ स्फटिकपात्र में कुछ सेब, नासपाती, नारङ्गी एवं बहुत से अँगूरों के गुच्छे सजे रक्खे थे एवं

उसी की बगल में दो छोटे प्याले, एक स्वर्णाभ मदिरा का काँच-पात्र अतिथियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। घर के भीतर से एक अपूर्व धूप के एक प्रकार के मादक सुगन्धित धूएं ने आकर मुझे विह्वल कर दिया।

मैं काँपते हुए हृदय से उस खोजा के फैले हुए दोनों पाँवों का जैसे ही लंघन करने चला, वैसे ही वह चौंक उठा—उसकी गोद में रक्खी हुई तलवार पत्थर के फर्श पर शब्द करती हुई गिर पड़ी।

अचानक एक विकट चीत्कार को सुन चौंककर देखा, अपनी उसी कैम्प-खाट के ऊपर पसीने से तरबतर बैठा हूँ—प्रातःकालीन प्रकाश से कृष्णपक्ष के चाँद का टुकड़ा जागरण से कष्ट पाये हुए रोगी की भाँति पाण्डुवर्ण हो गया है—एवं हमारा पागल मेहरअली अपने नित्य नियम के अनुसार उषःकालीन जनशून्य मार्ग पर "हटजाओ, हटजाओ" कह कर चीत्कार करता हुआ चल रहा है।

इस प्रकार मेरे 'अरबोपन्यास' की एक रात्रि अचानक व्यतीत होगई, परन्तु अब भी एक 'सहस्र-रजनी-चरित्र' बाकी है।

मेरे दिन के साथ रात्रि का एक भारी विरोध चल पड़ा। दिन के समय श्रान्त-क्लान्त शरीर से काम करने चला जाता एवं शून्य स्वप्न-मयी मायाविनी रात को कोसता रहता—फिर सन्ध्या के बाद अपने दिन के कार्यबद्ध अस्तित्त्व को अत्यन्त तुच्छ, मिथ्या एवं हास्य-जनक समझने लगता।

सन्ध्या के पश्चात् मैं एक नशे के जाल में विह्वलभाव से जकड़ कर रह जाता। सैकड़ों वर्ष पहले के किसी एक उल्लिखित इतिहास के अन्तर्गत एक और अपूर्व व्यक्ति हो उठता, उस समय फिर विलायती कोट एवं चुस्त पतलून मुझे अच्छी नहीं लगती। उस समय मैं मस्तक पर एक लाल मखमल की टोपी लगाकर, ढीला पायजामा, फूलदार काबा एवं रेशम का लम्बा चौंगा पहन, रंगीन रूमाल में इत्र छिड़क कर, बड़े

यत्न पूर्वक सजने लगता एवं सिगरेट को फेंक कर गुलाब जल से भरे पेचवान की बड़ी निगाली लेकर एक ऊँचे गद्दे पर, बड़े मसनद के सहारे बैठ जाता। जैसे रात्रि में किसी-एक अपूर्व प्रिय-सम्मेलन के लिए बड़े आग्रह पूर्वक तैयार होकर बैठा होऊँ।

उसके बाद अन्धकार जितना ही घनीभूत होता, उतना ही जो कोई एक अद्भुत व्यापार घटने लगता, उसका मैं वर्णन नहीं कर पाऊँगा। ठीक जैसे एक चमत्कारिक कहानी के कुछ बिखरे हुए अंश वसन्त की आकस्मिक वायु से उस विशाल प्रासाद के विचित्र कमरों में उड़ते फिरते हों। कुछ दूर तक सिलसिला मिलता चला जाता; उसके बाद फिर अन्त नहीं दिखाई देता। मैं भी उन उड़ते हुए बिखरे अंशों का अनुसरण करता हुआ, सारी रात कमरे-कमरे में देखता फिरता।

इस खण्ड-स्वप्न के भँवर के बीच, उस किंचित् हिना की गन्ध, सितार के शब्द, किंचित् सुगन्धित जल की बौछार मिश्रित वायु की लहरों के बीच एक नायिका को क्षण-क्षण पर विद्युत् शिखा की भाँति चकित होकर देख लिया करता। वह जाफरानी रङ्ग का पायजामा एवं दोनों श्वेत-अरुण भरे कोमल पाँवों में जरी की नुकीली चप्पलें पहने, छाती के पीन-पयोधरों को जरी की बेल-बूटे वाली कंचुकी से कसे, माथे पर एक लाल टोपी एवं उसमें लटकती हुई सोने की झालर को झुलाती हुई, अपने शुभ्र ललाट एवं कपोलों को ढाँके रहती।

उसने मुझे पागल कर दिया। मैं उसी के अभिसार में प्रत्येक रात्रि को नींद के रसातल राज्य में स्वप्नों के संकीर्ण-पथवाली मायापुरी के बीच गली-गली में, कोने-कोने में भ्रमण करता घूमता रहता।

किसी-किसी दिन सन्ध्या के समय बड़े दर्पण के दोनों ओर दो बत्ती जलाकर प्रयत्न पूर्वक शाहजादे के समान साज सजाता, इसी समय अचानक देख पाता, दर्पण में मेरे प्रतिबिम्ब के समीप ही क्षण भर के लिए उसी ईरानी-तरुणी की छाया आ पड़ी है—पल भर में ही ग्रीवा

झुकाकर, अपने घने काले विशाल नेत्रों की पुतलियों में सुगभीर तीव्र आवेग वेदना युक्त आग्रहपूर्ण कटाक्षपात्र कर, सरस सुन्दर विम्बाधरों पर एक अस्फुट भाषा का आभास मात्र दे, लघु ललित नृत्य द्वारा अपनी यौवन-पुष्पित देह-लता को द्रुत-वेग से ऊर्ध्वाभिमुख घुमाती हुई, क्षण भर में ही वेदना, वासना और विभ्रम के हास्य, कटाक्ष और आभूषण-ज्योति की चिनगारियों की वर्षा करती हुई दर्पण में ही विलीन हो जाती। पर्वतारण्य की समस्त सुगन्धि को लूटता हुआ एक उद्दाम वायु का उच्छ्वास आकर मेरी दोनों बत्तियों को बुझा देता, मैं साज-सज्जा त्याग कर बड़े घर के कोने में पड़ी हुई शय्या के ऊपर पुलकित शरीर एवं मुँदे हुए नेत्रों से शयन करने लेट जाता—मेरे चारों ओर उसी वायु के बीच, उसी अरावली गिरिकुञ्ज के समस्त मिश्रित सौरभ के बीच जैसे अनेक आदर, अनेक चुम्बन, अनेक कल-गुञ्जन, अनेक कोमल कर-स्पर्श घने अन्धकार को परिपूर्ण करते हुए जान पड़ते, कान के समीप अनेक कल-गुञ्जन सुन पाता, मेरे माथे के ऊपर सुगन्धित निश्वास आकर पड़ने लगती एवं मेरे कपोलों को मृदु सौरभ रमणीय सुकोमल दुपट्टा बारम्बार उड़-उड़कर आता हुआ स्पर्श करने लगता। धीरे-धीरे जैसे एक मोहिनी-सर्पिणी अपने मादक-वेष्टन से मेरे सर्वाङ्ग को बाँध लेती, मैं गहरी-निःश्वास छोड़कर अचेतन शरीर से गहरी निद्रा में अभिभूत हो जाता।

एक दिन अपराह्णकाल में, मैंने घोड़े पर चढ़कर बाहर निकलने का संकल्प किया—कौन मुझे निषेध करने लगा, नहीं जानता—परन्तु उस दिन निषेध नहीं माना। एक लकड़ी के डण्डे पर मेरा साहबी-हैट एवं कोट टँगा हुआ था, उतार कर पहनने का उपक्रम कर रहा था, इसी समय शुस्ता नदी की बालू एवं अरावली पर्वत के शुष्क-पल्लव-राशि की ध्वजा उड़ाता हुआ अचानक ही एक प्रबल बवण्डर मेरे उस कुर्ता एवं टोपी को उड़ाता हुआ ले चला एवं एक अत्यन्त सुमधुर

कल-हास्य उसी हवा के साथ उड़ता-उड़ता आश्चर्य के सभी पर्दों पर आघात करता-करता, उच्च से उच्चतर सप्तक में उठकर, सूर्यास्तलोक के पास जाकर मिल गया।

उस दिन फिर घुड़सवारी नहीं हो सकी एवं उसके दूसरे दिन से ही उस हास्यास्पद कोट एवं साहबी-हैट को पहनना एकबारगी छोड़ दिया।

फिर उसी दिन आधी रात को बिछौने पर उठकर बैठते हुए सुन पाया, जैसे कोई हूकें भर-भर कर, छाती फाड़-फाड़कर रो रही है—जैसे मेरी खाट के नीचे, फर्श के नीचे, इस विशाल प्रसाद की पत्थर की दीवारों के नीचे एक अँधेरे गर्त्त के भीतर से रोती-रोती कह रही है—"तुम मेरा उद्धार करके ले चलो—कठिन माया, गम्भीर निद्रा, निष्फल स्वप्नों के समस्त दरवाजों को तोड़ फेंक कर, तुम मुझे घोड़े पर बैठा कर, अपनी छाती से चिपटा कर, वन के भीतर होते हुए, पहाड़ के ऊपर होते हुए, नदी पार करके, अपने सूर्यालोकित घर के भीतर मुझे ले जाओ। मेरा उद्धार करो।"

मैं कौन हूं ? मैं किस प्रकार उद्धार करूँगा ? मैं इस घूमते हुए परिवर्त्तनशील स्वप्न-प्रवाह के बीच से किस डूबती हुई कामना-सुन्दरी को तट पर खींच लाऊँगा ? तुम कब थीं, कहाँ थीं ? हे दिव्य रूपिणी ! तुमने किस शीतल झरने के तट पर खजूर-कुंज की छाया में, किस गृह-हीना मरुवासिनी की गोद में जन्म ग्रहण किया था ? तुम्हें कौन बदमाश डाकू, वनलता में से पुष्प-मंजरी के समान, माता की गोद से अलग हटा कर, विद्युतगति गामी अश्व के ऊपर चढ़ा कर, ज्वलन्त बालुका-राशि को पार करके, किस राजपुरी की दासी-हाट में बिक्री करने के लिए ले गया था ? उस स्थान पर किस बादशाह के सेवक ने तुम्हारे नव-विकसित लज्जा-कातर यौवन की शोभा का निरीक्षण कर, स्वर्ण-मुद्राएें गिन दीं, और समुद्र पार करके तुम्हें स्वर्ण की शिविका (पालकी) में

बैठाकर, स्वामी के अन्तःपुर में उपहार स्वरूप दे डाला ? वहाँ का वह क्या इतिहास है ? वह सारङ्गी का सङ्गीत, नूपुरों की क्वाण एवं शीराजी की सुनहरी मदिरा के बीच-बीच छुरियों की झलक, विष की ज्वाला, कटाक्षों का आघात। क्या असीम ऐश्वर्य, क्या अनन्त कारागार। दोनों ओर दो दासियाँ चूड़ियों में हीरकों की बिजली को चमकाती हुई चंवर-डुला रही हैं। शहनशाह बादशाह शुभ्र चरणों की मणिमुक्ताखचित पादुकाओं के समीप लोट रहे हैं। बाहरी दरवाजे के पास यमदूत के समान हब्शी देवदूतों के समान सजे हुए, नंगी तलवार हाथ में लिए खड़े हैं। उसके पश्चात् उस रक्त-कलुषित, ईर्ष्या-फेनिल, षड्यन्त्र-संकुल, भीषणोज्वल ऐश्वर्य प्रवाह से भासमान होकर, तुम मरुभूमि की पुष्प-मञ्जरी किस निष्ठुर मृत्यु के बीच अवतीर्ण अथवा किस निष्ठुरतम महिमा-तट पर बलि हो गई हो ?

इसी समय अचानक वही पगला मेहरअली चीत्कार कर उठा—"हट जाओ, हट जाओ। सब झूँठ है, सब झूँठ है।" उठ कर देखा, सवेरा होगया है, चपरासी ने डाक की चिट्ठी-पत्री लेकर मेरे हाथ में दीं एवं रसोइयों ने आकर सलाम करते हुए पूछा—"आज कैसा खाना बनाना होगा ?"

मैंने कहा—"नहीं, अब इस मकान में रहना नहीं होगा। उसी दिन मेरा सामान उठकर ऑफिस में जा पहुँचा। ऑफिस का वृद्ध किरानी करीम खाँ मुझे देखकर कुछ हँसा। मैं उसकी हँसी से विरक्त हो, कोई उत्तर न दे, काम करने लगा।

ज्यों-ज्यों सन्ध्याकाल आने लगा, त्यों-त्यों अन्यमनस्क होने लगा—मन को लगा, इसी समय कहीं जाना है—रुई के हिसाब की जाँच का काम मनको अत्यन्त अनावश्यक लगा, निजाम की निजामत भी मुझे कुछ बड़ी चीज नहीं लगी—जो कुछ वर्त्तमान है, जो कुछ मेरे चारों ओर

चल रहा है, फिर रहा है, काम कर रहा है, खा रहा है—वह सब मुझे अत्यन्त दीन; अर्थहीन, अकिंचित्कर प्रतीत होने लगा।

मैं कलम पटक कर, बड़े खाते को बन्द कर, उसी समय टमटम पर चढ़ कर चल दिया। देखा—टमटम ठीक गोधूलि मुहूर्त में अपने आप उसी पाषाण-प्रासाद के दरवाजे पर जाकर ठहर गई। शीघ्रतापूर्वक सीढ़ियों पर चढ़कर घर के भीतर प्रवेश किया।

आज सब कुछ निस्तब्ध है। अंधेरे कमरों ने जैसे क्रोध करके मुँह को भारी बना लिया है। अनुताप से मेरा हृदय उद्वेलित होने लगा, परन्तु किसे बताऊँ, किसके समीप क्षमा माँगूं, ढूँढ़ कर भी नहीं पासका। मैं सूने मन से अंधेरे में ही प्रत्येक कमरे को देखता हुआ घूमने लगा। इच्छा होने लगी, एक बाजा हाथ में लेकर किसी को उद्देश्य बना कर गाना गाऊँ, कहूँ—"हे वह्नि! जिस पतङ्ग ने तुम्हें छोड़ कर भागने की चेष्टा की थी, वह फिर मरने के लिए आया है। इस बार उसे क्षमा कर दो, उसके दोनों पंख जला दो, भस्मसात् कर डालो।"

अचानक ऊपर से मेरे मस्तक पर दो बूँद अश्रु-जल गिरा। उस दिन अरावली पर्वत की चोटियों पर घनघोर बादल घिर आये थे। अँधेरा जंगल एवं शुस्ता का काला पानी एक भीषण प्रतीक्षा में स्थिर हो गए थे। जल, स्थल, आकाश सहसा सिहर उठे; एवं अचानक ही एक बिजली के दाँत चमकाता हुआ बवण्डर बन्धन-मुक्त उन्माद की भाँति पथ-हीन सुदूर वन के भीतर से आर्त्त-चीत्कार करता-करता छूट कर आ पहुँचा। प्रासाद के बड़े-बड़े सूने कमरों के समस्त दरवाजे भड़भड़ाते हुए तीव्र वेदना से हू-हू करते हुए रोने लगे।

आज सभी कर्मचारी आफिस में थे, यहाँ पर प्रकाश करने के लिए भी कोई नहीं था। उस मेघाछन्न अमावस्या की रात्रि में कमरे के भीतर भरे हुए कसौटी-से-काले अँधेरे के बीच में स्पष्ट अनुभव करने लगा—एक रमणी पलङ्ग के नीचे गलीचे के ऊपर औंधी लेटी हुई,

दोनों मुट्ठी बाँधे अपने बिखरे हुए केशों को नोंच-नोंच कर फेंक रही है, उसके गौर वर्ण मस्तक से रक्त बहता हुआ गिर रहा है, कभी वह शुष्क-तीव्र अट्टहास्य से हा-हा करके हँस उठती है; कभी बिखर-बिखर कर फूट-फूट कर रोती है, दोनों हाथों से वक्षस्थल की कंचुकी को फाड़-फेंक कर खुली हुई छाती पर आघात करती है; खुली हुई खिड़की से वायु गरजी हुई आ रही है एवं मूसलाधार वर्षा आकर उसके सर्वाङ्ग को अभिषिक्त (गीला) किए दे रही है।

सारी रात आँधी भी नहीं थमी, क्रन्दन भी नहीं थमा। मैं निष्फल परिताप से प्रत्येक कमरे में अँधेरे में ही घूमने-फिरने लगा। कोई कहीं भी नहीं था, किसे सान्त्वना दूँ ? यह प्रचण्ड अभिमान किसका है। वह अशान्त आक्षेप कहाँ से उठ रहा है ?

पागल चीत्कार कर उठा—"हट जाओ, हट जाओ ! सब झूठ है, सब झूठ है।"

देखा, सबेरा होगया है एवं मेहरअली इस घोर दुर्योग के दिन भी यथानियम प्रासाद की प्रदक्षिणा करके अपना अभ्यस्त चीत्कार कर रहा है। अचानक मेरे मन को लगा—'शायद वह मेहरअली ने भी मेरी ही तरह एक समय इस प्रासाद में निवास किया है, इस समय पागल होकर बाहर रहते हुए भी इस पाषाण-राक्षस के मोह से आकर्षित होकर प्रतिदिन प्रातःकाल प्रदक्षिणा करने आता है।

मैं उसी समय उसी वर्षा में पागल के समीप पहुँचकर, उससे पूछने लगा—"मेहरअली, क्या झूठ है रे ?"

वह मेरी बात का कोई उत्तर न दे, मुझे ठेल-हटा कर, अजगर के मुँह के ग्रास के समान चारों ओर चक्कर काटते हुए मोहाविष्ट पक्षी के समान चीत्कार कर-कर के मकान के चारों ओर घूमने लगा। केवल

प्राणपण से स्वयं को सतर्क करने के लिए बारम्बार कहने लगा—"दूर हटो, दूर हटो, सब झूठ है, सब झूठ है।"

मैं उसी वर्षा-आँधी के बीच पागल के समान आफिस पहुँच, करीमखाँ को बुलाकर बोला—"इसका अर्थ क्या है, मुझसे स्पष्ट कहो।"

वृद्ध ने जो कुछ कहा, उसका तात्पर्य यह है—"एक समय उस प्रासाद में अनेक अतृप्त वासनाएँ, अनेक उन्मत्त सम्भोग-शिखाएँ लहरें लिया करती थीं—उन सभी चित्तदाहों से, उन सभी निष्फल कामनाओं के अभिशाप से इस प्रासाद का प्रत्येक प्रस्तरखण्ड क्षुधार्त्त, तृषार्त्त होरहा है, सजीव मनुष्य को पाकर, उसे लालायित पिशाचिनी के समान खाकर फेंक देना चाहता है। जिन्होंने तीन रात तक इस प्रासाद में निवास किया है, उनमें केवल मेहरअली ही पागल होकर बाहर निकल आया है, आज तक कोई भी उसके ग्रास से नहीं बच पाया।"

मैंने पूछा—"मेरे उद्धार का क्या कोई मार्ग नहीं है?"

वृद्ध ने कहा—"एक उपाय है, वह अत्यन्त कठिन है। वह तुमसे कहता हूँ—परन्तु उससे पहले उस फूल बाग की एक ईरानी क्रीत-दासी (खरीदी हुई गुलाम-स्त्री) का पुराना इतिहास कहना आवश्यक है। वैसी आश्चर्यजनक एवं वैसी हृदय-विदारक घटना संसार में और कहीं भी नहीं घटी।"

इसी समय कुलियों ने आकर खबर दी—'गाड़ी आरही है।' इतनी जल्दी? झटपट बिछौने आदि बाँधते-बाँधते गाड़ी आ पहुँची। उस गाड़ी के फर्स्ट क्लास में से एक सो कर उठा हुआ अंग्रेज खिड़की से बाहर मुँह बढ़ाये स्टेशन का नाम पढ़ने की चेष्टा कर रहा था, हमारे सहयात्री-बन्धु को देखते ही 'हलो' कहता हुआ चीत्कार कर उठा एवं अपने ही डिब्बे में उन्हें खींच लिया। हम लोग सैकेण्ड क्लास में बैठे। बाबू की

कोई खबर नहीं मिली; कहानी का अन्त भी नहीं सुना जा सका।

मैं बोला—"वह व्यक्ति हम लोगों को बेवकूफ जैसा देखकर, कौतुक करते हुए, ठग ले गया; कहानी बेबुनियाद और मनगढ़न्त थी।"

इस तर्क के कारण अपने थियोसोफिस्ट आत्मीय के साथ मेरा जीवन भर के लिए विच्छेद हो गया

एक रात्रि

सुरबाला के साथ इकट्ठे पाठशाला गया हूँ एवं 'बहू-बहू' (आँख-मिचौनी जैसा एक खेल) खेला हूँ। उसके घर जाने पर सुरबाला की माँ बड़ा स्नेह करती थीं एवं हम दोनों को एकत्र-कर अपने आप कह उठतीं—"अहा, दोनों की अच्छी जोड़ी है।"

छोटा था, परन्तु बात का अर्थ एक प्रकार से समझता था। सुरबाला के प्रति जो सर्वसाधारण की अपेक्षा मेरा कुछ विशेष हक़ था, वह धारणा मेरे मन में बद्धमूल होगई थी। उसी अधिकार-मद में मत्त होकर उसके प्रति मैंने कोई शासन एवं उपद्रव नहीं किया—ऐसा नहीं है। वह भी सहिष्णुभाव से मेरी सब प्रकार की फ़रमायशों का पालन करती एवं दण्ड सह वहन करती थी। मुहल्ले में उसके रूप की प्रशंसा थी, परन्तु बर्बर (उद्दण्ड) बालक की आँखों में उस सौन्दर्य का कोई गौरव नहीं था—मैं केवल जानता, सुरबाला ने मेरा ही प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए पितृ-गृह में

जन्म-ग्रहण किया है, इसीलिए वह मेरी विशेष रूप से अवहेलना की पात्र है।

मेरे पिता चौधरी जमींदार के नायब थे। उनकी इच्छा थी, मेरा हाथ सध जाते ही मुझे जमींदारी-सम्बन्धी काम सिखाकर, एक कहीं भी गुमाश्तागीरी में प्रवृत्त करा देंगे। परन्तु, मैं मन-ही-मन उनसे नाराज था। हमारे मुहल्ले का नीलरतन जिस प्रकार कलकत्ता भाग कर, पढ़ना-लिखना सीख कर कलक्टर साहब का नाजिर हो गया था, मेरे जीवन का लक्ष्य भी उसी प्रकार बहुत ऊँचा था—कलक्टर का नाजिर न हो सका तो जजी-अदालत का हैडक्लर्क होऊँगा, इसे मैंने मन-ही-मन निश्चय स्थिर कर रक्खा था।

सदैव ही देखता, मेरे पिता उक्त अदालत जीवी के प्रति अत्यन्त सम्मान करते—अनेक उपलक्ष्य में मछली-तरकारी रुपया-पैसा लेकर जैसे उनकी पूजार्चना की जाती थी, उसे भी बाल्यकाल से हा मैंने जान लिया था; इसीलिए अदालत के छोटे कर्मचारी, यही क्यों, प्यादों तक के लिए अपने हृदय में एक बड़े सम्मान का आसन दे रक्खा था। यही हमारे बंगाल-देश के पूज्य देवता है, तेतीस करोड़ के छोटे-छोटे नवीन-संस्करण। जायदाद सम्बन्धी सिद्धि लाभ के सम्बन्ध में स्वयं सिद्धिदाता गणेश की अपेक्षा इन सबों के प्रति लोगों का आन्तरिक भरोसा बहुत अधिक है; इसीलिए पहले गणेशजी का जो कुछ हक होता था, आजकल ये लोग ही उस सब को पाते रहते हैं।

मैं भी नीलरतन के दृष्टान्त से उत्साहित होकर एक बार विशेष सुविधा प्राप्त होने पर कलकत्ता भाग गया। पहले गाँव के एक जान-पहिचान वाले व्यक्ति के घर में ठहरा, उसके बाद पिताजी के पास से भी अध्ययन के लिए कुछ-कुछ सहायता पाने लगा। लिखना-पढ़ना नियम-पूर्वक चलने लगा।

इसके अतिरिक्त फिर सभा-समितियों में भी योग देने लगा। देश

के लिए अचानक ही प्राण-विसर्जन कर देना तुरन्त आवश्यक है, इस सम्बन्ध में मुझे कोई सन्देह नहीं था। परन्तु, किस प्रकार से उक्त दु:साध्य काम को किया जा सकता हूँ; यह मैं नहीं जानता था एवं किसी ने उदाहरण भी नहीं दिखाया था। किन्तु, यह होते हुए भी उत्साह में कोई कमी नहीं थी। हम लोग गाँव के गँवार लड़के थे, कलकत्ते के घुटे-पिसे लड़कों की भाँति सब चीजों को हँसी में उड़ा देना ही नहीं सीखा था; अस्तु हम लोगों की निष्ठा अत्यन्त दृढ़ थी। हमारी सभा के संचालकगण भाषण देते, और हम लोग चन्दे की बही लेकर बिना खाये-पिये दोपहरी की धूप में घूमते-घूमते घर-घर भिक्षा माँगा करते थे, रास्ते के सहारे खड़े होकर विज्ञापन के पर्चे बाँटा करते थे, सभास्थल पर जाकर बेंच-चौकी सजाते, दलपति के लिए किसी के द्वारा एक बात भी कह दिये जाने पर कमर बाँध कर मार-पीट करने को उद्यत हो जाते। शहर के लड़के इन सब लक्षणों को देखकर हम लोगों को गँवार कहते।

नाज़िर या सरिश्तेदार बनने को आया था, परन्तु 'मैजिनी गैरीबाल्डी' होने की तैयारियाँ करने लगा।

इसी बीच मेरे पिता एवं सुरबाला के पिता एकमत होकर सुरबाला के साथ मेरा विवाह करने के उद्योग में लग गए।

मैं पन्द्रह वर्ष की आयु में कलकत्ता भाग आया था, उस समय सुरबाला की आयु आठ वर्ष की थी; इस समय मैं अठारह वर्ष का हूँ। पिताजी की राय में मेरे विवाह की आयु क्रमश: निकली जारही है। परन्तु, इस ओर मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की थी कि जीवनभर विवाह न करके स्वदेश के लिए मरूँगा—पिताजी से कहा—'विद्याध्ययन सम्पूर्ण समाप्त न होने तक विवाह नहीं करूँगा।'

दो-चार महीने में खबर पाई; 'वकील रामलोचन बाबू के साथ सुरबाला का विवाह होगया है।' पतित-भारत के लिए चन्दा वसूल करने में व्यस्त था, यह सम्वाद अत्यन्त तुच्छ जान पड़ा।

एन्ट्रेंस पास कर ली। फर्स्ट आर्ट्स देने वाला था, इसी समय पिताजी की मृत्यु होगई। संसार में केवल मैं अकेला नहीं था; माता एवं दो बहिनें भी थीं। अस्तु, कॉलेज छोड़ कर काम की खोज में घूमना पड़ा। बहुत प्रयत्न करने पर नोआखाली विभाग के एक छोटे से हाई स्कूल में सैकेण्ड-मास्टर का पद प्राप्त हुआ।

मन में सोचा—'मैंने उपयुक्त काम पाया है। उपदेश और उत्साह देकर एक-एक छात्र को भावी-भारत का एक-एक सेनापति बना दूँगा।'

कार्य आरम्भ कर दिया। देखा; भावी भारतवर्ष की अपेक्षा आने वाले इम्तहान की हड़बड़ी बहुत अधिक है। छात्रों को 'ग्रामर' और 'अलजेब्रा' के बाहर की कोई बात कहने से हैडमास्टर क्रोध करता। दो-एक महीने में ही मेरा भी उत्साह निस्तेज हो आया।

मेरे समान प्रतिभाहीन व्यक्ति घर में बैठक कर अनेक प्रकार की कल्पना करते हैं, अन्त में कार्य क्षेत्र में उतर कर, कन्धे पर हल उठाने पर, पीछे से पूँछ मरोड़े जाने पर, मस्तक झुकाए सहिष्णुभाव से दिन भर खेत जोतने का काम करके सन्ध्या के समय पेट भर भूसा खाने को मिल जाने पर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। फिर उछल-कूद का उत्साह नहीं रहता।

कहीं आग न लग जाय इस आशंका से एक मास्टर को स्कूल के मकान में ही रहना पड़ता था। मैं अकेला आदमी था, मेरे ऊपर ही यह भार पड़ा था। स्कूल की बड़ी चहारदीवारी से सटी हुई एक झोंपड़ी में मैं रहता था।

स्कूल की इमारत बस्ती से कुछ दूर थी, एक बड़ी पुष्करिणी (तालाब) के किनारे। चारों ओर सुपारी, नारियल एवं मदार के पेड़ थे तथा स्कूल की इमारत से प्रायः सटे हुए ही दो विशाल पुराने नीम के पेड़ पास-पास सटे हुए छाया प्रदान करते थे।

एक बात का अब तक उल्लेख नहीं किया एवं अब तक उल्लेख-

योग्य कह कर समझता भी नहीं रहा। यहाँ के सरकारी वकील राम-लोचन राय का घर हमारे स्कूल की इमारत से थोड़ी ही दूर है। एवं उनके साथ उनकी स्त्री—मेरी बचपन की सहेली सुरबाला—थी, यह भी मैं जानता था।

रामलोचन बाबू के साथ मेरी बातचीत हुई। सुरबाला के साथ मेरी बाल्यकाल की जान-पहिचान है, इसे रामलोचन बाबू जानते हैं या नहीं—नहीं जानता, मैंने भी नवीन-परिचय में उस सम्बन्ध में कोई भी बात कहना उचित नहीं समझा। एवं सुरबाला जो किसी समय मेरे जीवन के साथ किसी प्रकार संलग्न थी, वह बात मेरे मन में अच्छी तरह उदय नहीं हुई।

एक दिन, छुट्टी के दिन, रामलोचन बाबू के घर, उनके साथ भेंट करने को गया था। याद नहीं किस विषय की आलोचना हो रही थी, शायद वर्तमान भारतवर्ष की दुरवस्था के सम्बन्ध में। वे उसके लिए विशेष चिन्तित एवं म्रियमाण हों, ऐसा नहीं; परन्तु विषय ऐसा था कि तम्बाकू पीते-पीते इस सम्बन्ध में एक डेढ़ घण्टे तक अनर्गल बातें एवं दुःख किया जा सकता था।

इसी बीच पास के कमरे से अत्यन्त कोमल एक चूड़ियों की खन-खन, कपड़े की कुछ खस्-खस एवं पावों का भी एक शब्द सुनाई पड़ा, अच्छी तरह समझ गया; खिड़की की आड़ में से कोई कौतूहलपूर्ण नेत्रों से मुझे निरीक्षण कर रहा है।

उसी समय दो आँखें मुझे याद हो आईं—विश्वास, सरलता एवं शैव की प्रीति से छलकती हुई दो बड़ी-बड़ी आँखें, काले-काले तारे, गहरी काली पलकें, स्थिर-स्निग्ध दृष्टि। सहसा हृदय को किसी ने जैसे एक कठिन मुष्टिका द्वारा दबाकर पकड़ लिया एवं वेदना से हृदय टन् टन् कर उठा।

घर लौट कर आया, परन्तु वह व्यथा लगी रही। लिखना-पढ़ना

जो भी करता, किसी से भी मन का भार दूर नहीं होता, मन अचानक ही एक भारी बोझ जैसा होकर, छाती की नसें पकड़ कर झूलने लगा।

सन्ध्या के समय कुछ स्थिर होकर सोचने लगा—'ऐसा क्यों हुआ ?' मन के भीतर से उत्तर आया—"तुम्हारी वह सुरबाला कहाँ गई ?"

मैंने प्रत्युत्तर में कहा—'मैंने तो उसे इच्छापूर्वक छोड़ दिया था। वह क्या चिरकाल तक मेरे लिए बैठी रहती ?'

मन के भीतर से किसी ने कहा—"उस समय जिसे इच्छा करते ही प्राप्त कर सकते थे, इस समय सिर पटक कर मरने पर भी, उसे एक बार आँखों से देखने का अधिकार भी नहीं पा सकते। वह बचपन की सुरबाला तुम्हारे कितने ही नजदीक क्यों न रहे, उसकी चूड़ियों का शब्द सुन पाओगे, उसके केश-तैल की गन्ध अनुभव कर सकोगे, परन्तु बीच में बराबर एक प्रकार की दीवाल खड़ी रहेगी।"

मैं बोला—'उसे रहने दो-न, सुरबाला मेरी कौन है ?'

उत्तर सुना—"सुरबाला आज तुम्हारी कोई नहीं है, परन्तु सुरबाला तुम्हारी क्या नहीं हो सकती थी ?"

वह बात सच है। सुरबाला मेरी क्या नहीं हो सकती थी। मेरी सबसे अधिक अंतरङ्ग, मेरी सबसे अधिक निकटवर्त्ती, मेरे जीवन के सम्पूर्ण दु:ख-सुख की साथिन हो सकती थी—वह आज इतनी दूर, इतनी पराई, आज उसे देखना निषिद्ध, उसके साथ बात करने में भी दोष, उसके सम्बन्ध में चिन्ता करना पाप। फिर एक रामलोचन जो कहीं से कुछ नहीं था, अचानक आ उपस्थित हुआ, केवल रटे हुए दो-एक कण्ठस्थ मन्त्र पढ़ कर सुरबाला को पृथ्वी के अन्य सभी लोगों के पास से एक क्षण भर में ही झपट्टा मार कर ले गया !

मैं मनुष्य-समाज में नई नीति का प्रचार करने को नहीं बैठा हूँ, समाज को भंग करने नहीं आया, बन्धन नहीं तोड़ना चाहता। मैं अपने

मन के स्वाभाविक भाव को ही केवल व्यक्त कर रहा हूँ। अपने मन में जो सब भाव उदय होते हैं, वे क्या सभी विवेचना-संगत हैं। रामलोचन के घर की दीवार की ओट में जो सुरबाला विराज रही है, वह जैसे रामलोचन की अपेक्षा भी बहुत करके मेरी है, यह बात मैं किसी भी प्रकार मन से निकाल नहीं पाता। इस प्रकार की चिन्ता नितान्त असङ्गत एवं अन्यायपूर्ण है इसे स्वीकार करता हूँ, परन्तु अस्वाभाविक नहीं है।

इस समय से अब मैं किसी काम में मनको नहीं लगा पाता। दोपहर की क्लास में जिस समय विद्यार्थी गुनगुनाते हुए बैठे रहते हैं, बाहर सब झाँ-झाँ करते हैं, तनिक उष्ण वायु नीम वृक्ष की पुष्प-मञ्जरी की सुगन्धि को बहा लाती है, उस समय इच्छा होती है—क्या इच्छा होती है, नहीं जानता—केवल इतना ही कह सकता हूँ कि भारतवर्ष के इन समस्त भावी आशास्वदों को व्याकरण की भूलों का संशोधन कराते हुए, जीवन व्यतीत करने की इच्छा नहीं होती।

स्कूल की छुट्टी हो जाने पर अपने बड़े घर में अकेले रहने से मन नहीं लगता, और किसी भले आदमी का भेंट करने के लिए आना भी असह्य लगता है। सन्ध्या के समय पुष्करिणी के तट पर सुपारी-नारियलों की अर्थहीन मर्मरध्वनि सुन-सुन कर सोचता—'मनुष्य-समाज एक जटिल भ्रमजाल है। उचित समय पर उचित काम करने में किसी का भी मन नहीं लगता। उसके बाद अनुचित समय पर अनुचित वासना लेकर अस्थिर होकर मरता (तड़पता) है।'

'तुम्हारे जैसे व्यक्ति सुरबाला के पति होकर वृद्धावस्था पर्यन्त बहुत सुखी रह सकते हैं, तुम होने को चले 'गैरी वाल्टी' एवं अन्त में हुए एक कस्बे के स्कूल के सैकिण्ड मास्टर।' फिर रामलोचन राय वकील, उनका विशेषकर सुरबाला का ही पति होना कोई आवश्यक नहीं था; विवाह के पहले समय तक उनके लिए जैसी सुरबाला थी, वैसी ही भव-

ठाकुरी। वे बिना किसी प्रकार के विचार अथवा चिन्ता के विवाह करके, सरकारी वकील बन, मजे में पाँच रुपये का रोजगार कर रहे हैं—जिस दिन दूध में धुंएँ की गन्ध आ जाय, उस दिन सुरबाला का तिरस्कार कर देते हैं, जिस दिन मन प्रसन्न हो, उस दिन सुरबाला के लिए गहने गढ़ा देते हैं। खूब मोटे-ताजे हैं, अचकन पहिनते हैं, कोई असन्तोष नहीं है; पुष्करिणी के तट पर बैठ कर आकाश के तारों की ओर देखकर, किसी दिन हाय-तोबा करके सन्ध्या व्यतीत नहीं करते।

रामलोचन एक बड़े मुकद्दमे में कुछ दिनों के लिए अन्यत्र गए थे। अपने स्कूल के घर में मैं जैसे अकेला था, उस दिन सुरबाला के घर में भी सुरबाला; शायद उसी प्रकार अकेली थी।

याद है, उस दिन सोमवार था। सवेरे से ही आकाश मेघाच्छन्न हो उठा था। दस बजे से रिमझिम वर्षा होनी आरम्भ होगई। आकाश की भाव-गति को देखकर हैडमास्टर ने जल्दी-जल्दी स्कूल की छुट्टी कर दी। काले बादलों के टुकड़े जैसे एक विशाल आयोजन में सारे दिन आकाश में दौड़-धूप करते हुए घूमते रहे। उसके दूसरे दिन सन्ध्या के समय मूसलाधार वर्षा एवं साथ-ही-साथ आँधी शुरू होगई। पहले पूर्व दिशा की ओर से हवा चल रही थी, क्रमशः उत्तर एवं उत्तर-पूर्व की ओर से बहने लगी।

इस रात में सोने की चेष्टा करना व्यर्थ था। याद आया, इस कठिन समय में सुरबाला घर में अकेली है। हमारे स्कूल की इमारत उसके घर की अपेक्षा अधिक मजबूत है। कई बार मन में सोचा—उसे स्कूल की इमारत में बुला लाकर मैं पुष्करिणी के घाट के ऊपर रात बिता दूँ। परन्तु, मन कुछ भी स्थिर नहीं कर पाया।

रात के जिस समय एक-डेढ़ बजे थे; अचानक ही बाढ़ आने का शब्द सुनाई पड़ा—समुद्र दौड़ा आरहा था। घर छोड़कर बाहर निकला। सुरबाला के घर की ओर चल दिया। मेरे मार्ग में तालाब की मेंढ़ थी—

उसके पास तक जाते-न-जाते मेरे घुटनों तक पानी आ गया। मेंढ़ के ऊपर चढ़कर जब खड़ा हुआ, उस समय एक दूसरी लहर आ उपस्थित हुई।

हमारी पोखर की मेंढ़ का एक भाग प्राय: दस-ग्यारह हाथ ऊँचा होगा। मेंढ़ के ऊपर मैं भी जिस समय उठा, दूसरी ओर से एक और व्यक्ति भी उठा। व्यक्ति कौन है, इसे मेरी सम्पूर्ण अन्तरात्मा, मेरे मस्तक से पाँव तक ने पहिचान लिया; एवं वह भी जैसे मुझे पहिचान गया— इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

फिर सब कुछ जल में डूब गया, केवल पाँच-छः हाथ के द्वीप के ऊपर हम दो प्राणी आकर खड़े होगए थे।

उस समय प्रलयकाल था, उस समय आकाश में तारों का प्रकाश नहीं था एवं पृथ्वी के समस्त दीपक बुझ गए थे—उस समय एक बात कहने में भी कोई हानि नहीं थी—परन्तु एक बात भी नहीं कही गई। किसी-ने-किसी-से भी एक कुशल-प्रश्न भी नहीं किया।

केवल दो व्यक्ति अन्धकार की ओर देखते रहे। पाँवों के नीचे गहरा काले रंग का उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गर्जन करता हुआ बह चला।

आज सम्पूर्ण विश्व-संसार को छोड़कर सुरबाला मेरे पास आकर खड़ी हुई है। आज मुझे छोड़कर सुरबाला का और कोई नहीं है। किसी समय वही शैशव की सुरबाला, किसी एक जलान्तर, किसी एक प्राचीन रहस्य अन्धकार से बह कर, इस सूर्य-चन्द्रालोकित लोक-परिपूर्ण पृथ्वी के ऊपर मेरे ही पार्श्व में आकर संलग्न हो गई थी; फिर, आज कितने दिन बाद वही आलोकमय, लोकमय पृथ्वी को त्याग कर इस भयंकर जनशून्य प्रलयान्धकार के बीच सुरबाला अकेली मेरे ही पार्श्व में आकर उपस्थित हुई है। जन्म स्रोत से उसी नव-कलिका को मेरे समीप लाकर डाल दिया था, मृत्यु स्रोत से उसी विकसित पुष्प को मेरे ही समीप लाकर डाल गया है—इस समय केवल एक और लहर के आते ही पृथ्वी

के इस टुकड़े से, विच्छेद के इस डण्ठल से, गिरकर हम दोनों व्यक्ति एक हो जायेंगे।

वह लहर न आये। स्वामी, पुत्र, गृह, धन, जन लेकर सुरबाला बहुत दिनों तक सुख से रहे। मैंने इस एक रात्रि में महाप्रलय के तट पर खड़े होकर अनन्त आनन्द का आस्वाद पा लिया है।

रात्रि प्रायः समाप्त हो आई है—आँधी थम गई है, पानी उतर गया है—सुरबाला कोई बात न कह कर घर चली गई, मैं भी कोई बात न कह कर अपने घर को गया।

सोचा, मैं नाजिर भी नहीं हुआ, सरिश्तेदार भी नहीं हुआ, गैरीबाल्डी भी नहीं हुआ, मैं एक टूटे-फूटे स्कूल का सैकेण्ड मास्टर हूँ, मेरे सम्पूर्ण इह-जीवन में केवल क्षणभर के लिए एक अनन्त रात्रि का उदय हुआ था—मेरी परमायु के सम्पूर्ण दिन-रात के बीच वही एकमात्र रात्रि ही मेरे तुच्छ जीवन की एकमात्र चरम सार्थकता है।

सम्पादक

मेरी स्त्री की मौजूदगी में प्रभा के सम्बन्ध में मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। उस समय प्रभा की अपेक्षा प्रभा की माता को लेकर कुछ अधिक व्यस्त था।

उस समय केवल प्रभा का खेलना, हँसना देखकर, उसकी आधी-आधी बात सुनकर एवं लाड़-प्यार लेकर ही तृप्त रहता था, जब तक अच्छा लगता हिलाया-डुलाया करता, रोना आरम्भ करते ही उसकी माता की गोद में सौंप कर झटपट छुट्टी पा लेता। उसे कभी बहुत चिन्ता और प्रयत्न करके मनुष्य बना कर बड़ा करना होगा—यह बात मेरे मन में नहीं आई।

अन्त में अचानक ही मेरी स्त्री की मृत्यु हो जाने पर एक दिन माँ की गोद से खिसक-कर लड़की मेरी गोद में आ पड़ी, उसे छाती से लगा लिया।

परन्तु 'मातृहीना पुत्री का दुगुने स्नेह से पालन करना मेरा कर्तव्य है' इसको मैंने विशेष

चिन्ता नहीं की, 'पत्नी-हीन पिता की बड़े यत्न से रक्षा करना उसका कर्तव्य है'——इसे उसने अधिक अनुभव किया था सो मैं ठीक नहीं समझ पाया। परन्तु छः वर्ष की आयु होते ही उसने 'बड़ा-बूढ़ापन' आरम्भ कर दिया। खूब देखा गया, वह छोटी-सी लड़की अपने पिता की एकमात्र अभिभावक बनने की चेष्टा करती थी।

मैंने मन-ही-मन हँसकर उसके हाथों आत्मसमर्पण कर दिया। देखा—जितना ही मैं अकर्मण्य, असहाय बनता, उतना ही उसे अच्छा लगता; देखा—मैं अपने कपड़ों को, छाते को उठाकर रखता तो वह ऐसा भाव धारण करती, जैसे उसके अधिकार में हस्तक्षेप किया जारहा हो। पिताजी जैसा इतना बड़ा पुतला (गुड्डा) उसे इससे पूर्व कहीं नहीं मिला था; इसीलिए पिताजी को खिलाकर, पहनाकर, बिछौने पर सुलाकर उसे सारे दिन बड़े आनन्द में रहती। केवल 'धारा पात' एवं 'पद्य-पाठ' प्रथम भाग के अध्यापन के समय अपने पितृत्व को थोड़ा-सा सचेतन कर लेना पड़ता।

परन्तु कभी-कभी चिन्ता होती, कन्या को सत्पात्र के साथ ब्याहने में बहुत धन की आवश्यकता है—मुझ पर इतने रुपये कहाँ। कन्या को तो यथा साध्य पढ़ना-लिखना सिखा रहा हूँ, परन्तु एक परिपूर्ण मूर्ख के हाथों पड़ जाने पर उसकी क्या दशा होगी?

उपार्जन (धन कमाने) में मन लगाया गया। सरकारी-दफ्तर में नौकरी करने की आयु बीत गई थी, दूसरे दफ्तरों में प्रवेश पाने की क्षमता भी नहीं थी। बहुत कुछ सोचकर पुस्तक लिखने लगा।

बांस की नली में छेद करके उसमें तेल नहीं रक्खा जा सकता, जल नहीं रखा जा सकता, उसकी धारण शक्ति की जड़ ही नहीं रहती; उससे संसार का कोई भी काम नहीं होता, परंतु फूंक देकर बिना खर्च किए ही अच्छी वंशी बज उठती है। मैं निश्चित रूप से जानता था, संसार के किसी भी काम में जिसे आगे की बुद्धि नहीं लगती, वह अवश्य

ही अच्छी किताब लिख लेगा। उसी साहस से एक प्रहसन लिखा, लोगों ने अच्छा कहा एवं रंग-मंच से अभिनीत हो गया।

अचानक यश का स्वाद पाकर ऐसी विपत्ति हुई कि प्रहसन फिर किसी प्रकार छोड़ नहीं सका। सारे दिन व्याकुल, चिन्तान्वित मुख लिए प्रहसन लिखने लगा।

प्रभा ने आकर आदर करते हुए स्नेह-सहास्यपूर्वक जिज्ञासा की—"पिताजी! नहाने नहीं जाओगे?"

मैं गरज उठा—"इस समय जा, इस समय जा, इस समय विरक्त (परेशान) मत कर।"

बालिका के मुख पर शायद एक फूंक से बुझे हुए दीपक की भाँति अँधेरा हो गया; किस समय वह अभिमान-विस्फारित-हृदय से चुपचाप कमरे से बाहर हो गई, मैं जान भी नहीं पाया।

दासी को फटकार देता, नौकर को मारने दौड़ता, भिक्षुक आवाज लगाकर भिक्षा माँगने आता तो उसे लाठी लेकर मारता। सड़क के सहारे मेरा घर होने से जब कोई निरीह पथिक खिड़की के बाहर से मुझसे मार्ग पूछता, तो मैं उसे 'जहन्नुम' नामक एक स्थान पर जाने के लिए अनुरोध करता। हाय, कोई भी नहीं समझ पाता, मैं एक बड़े मजे का प्रहसन लिख रहा हूँ।

परन्तु जितना मजा एवं जितना यश होता था, उसके परिमाण में रुपये कुछ भी नहीं होते। उस समय रुपयों की बात मन में भी नहीं थी। इस ओर प्रभा के योग्य अनेक पात्र, अन्य भद्र लोगों को कन्या-दान से मुक्त करने के लिए गो-वंश में बढ़ने लगे, मुझे उसका ख्याल ही नहीं था।

पेट की ज्वाला के न पकड़ने पर कोई चैतन्य नहीं होता, परन्तु इसी समय एक सुयोग जुट गया। जाहिरग्राम के एक जमींदार ने एक अखबार निकालने के लिए मुझे अपना वेतन भोगी सम्पादक बनाने के

हेतु अनुरोध कर भेजा। काम को स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों तक ऐसी तेजी से लिखता रहा कि रास्ते में बाहर निकलते ही लोग मुझे उँगली के इशारे से दिखाते एवं मैं स्वयं को मध्याह्न की धूप के समान दुर्निरीक्ष्य समझने लगा।

जाहिरग्राम के बगल में आहिरग्राम है। दोनों गाँव के जमींदारों में भारी दलबन्दी थी। पहले बात-बात में लट्ठबाजी होती रहती। इस समय दोनों पक्षों ने मजिस्ट्रेट के समीप मुचलका देकर लाठियाँ बन्द कर रक्खी थीं एवं मुझ सरस्वती-वाहन को पूर्ववर्त्ती खूनी लट्ठबाजों के स्थान पर नियुक्त कर रक्खा था। सभी कहते थे—मैंने पद-मर्यादा की रक्षा कर ली।

मेरे लेखों की ज्वाला से आहिरग्राम फिर सिर नहीं उठा पाता था। उनके जाति-कुल पितृ-पुरुषों (पूर्वजों) के इतिहास को पूर्णतः आद्योपान्त स्याही से रंग कर रख दिया था।

यह समय अच्छा था। खूब मोटा-ताजा हो उठा। मुँह सदैव प्रसन्नतापूर्ण, हास्यपूर्ण रहता। आहिरग्राम के पितृ-पुरुषों को प्रतिलक्षित कर, एक-एक ऐसा मर्मान्तिक वाक्य-शूल छोड़ता कि फिर सारा जाहिर-ग्राम हँसते-हँसते पके हुए फूट की भाँति खिल उठता। बड़े आनन्द में था।

अन्त में आहिरग्राम ने भी एक अखबार प्रकाशित किया। वह कोई बात ढक कर नहीं कहता। ऐसे उत्साहपूर्वक ठेठ गँवार भाषा में गालियाँ देता कि छापे के अक्षर तक जैसे आँखों के सम्मुख चिल्लाते हुए खड़े रहते। इसलिए दोनों गाँव के लोग उसकी बात को खूब स्पष्ट समझ लेते।

परन्तु, मैं विचाराभ्यास वश (पुरानी आदत के अनुसार) ऐसा मंजा करके ऐसे कूट-कौशल के साथ विपक्षी पर आक्रमण करता कि शत्रु-मित्र कोई भी नहीं समझ पाता कि मेरी बात का मर्म क्या है।

उसका यह फल हुआ कि जीत होने पर भी सब यही सोचते कि

मेरी हार हुई। झख मारकर सुरुचि के सम्बन्ध में एक उपदेश लिखा। देखा—भारी भूल की है; कारण यथार्थ—अच्छी वस्तु का मज़ाक बनाने में जैसी सुविधा है, वैसी उपहास्य-विषय में नहीं है। हनु-वंशी मनु-वंशियों का जिस प्रकार सहज ही मज़ाक उड़ा सकते हैं, मनु-वंशी हनु-वंशियों का मज़ाक बनाने में कभी भी उस प्रकार कृतकार्य नहीं हो सकते। अस्तु, सुरुचि को उन लोगों ने दाँत उखाड़ कर देश से बाहर निकाल दिया।

मेरे स्वामी मेरे प्रति फिर वैसा आदर न कर सके। सभा-स्थल में भी मेरा वैसा सम्मान नहीं रहा। सड़क पर बाहर निकलते ही लोग गले पड़ कर बातचीत करने नहीं आते। यही क्यों, मुझे देखकर किसी-किसी ने हँसना भी आरम्भ कर दिया।

इस बीच मेरे प्रहसनों की बात भी लोग पूर्णतः भूल गए। अचानक याद आया, मैं जैसे एक दियासलाई की सींक हूँ, मिनिट भर जलकर एकदम अन्त तक बुझ गया हूँ।

मन ऐसा निरुत्साहित होगया, माथा धरती से दे मारने पर भी एक पंक्ति नहीं लिखी जाती। मन को लगने लगा—'जीवित रहने में कोई सुख नहीं है।'

प्रभा मुझसे इस समय डरती थी। बिना बुलाए सहसा पास आने का साहस नहीं करती। वह समझ गई थी, मजे की बातें लिख सकते हों ऐसे पिताजी की अपेक्षा मिट्टी के पुतले कहीं अच्छे साथी हैं।

एक दिन देखा गया हमारा 'आहिरग्राम प्रकाश' जमींदार को छोड़ कर मुझको ले बैठा है। कुछ तो बहुत ही भद्दी बातें लिखी थीं। मेरे परिचित बन्धु-बान्धव एक-एक करके सभी उस अखबार को लेकर हँसते-हँसते मुझे सुना गए।" कोई-कोई बोला—"इसका विषय जैसा भी हो, भाषा की बहादुरी है। अर्थात् गालियाँ जो दी थीं, उन्हें भाषा देख कर ही भली-भाँति समझा जा सकता था। सारे दिन बीसियों व्यक्तियों द्वारा वही एक बात सुनी।

मेरे घर के सामने एक बगीचा-सा था। सन्ध्या के समय अत्यन्त पीड़ित-हृदय से वहीं अकेला घूम रहा था। पक्षियों ने घोंसलों में लौटकर, जिस समय कलरव बन्द करके, स्वतन्त्रतापूर्वक, सन्ध्या की शान्ति के बीच आत्मसमर्पण कर दिया, उस समय अच्छी तरह समझ गया कि पक्षियों के बीच रसिक-लेखकों का दल नहीं है एवं सुरुचि को लेकर तर्क नहीं होते।

मनमें केवल यही सोच रहा था क्या उत्तर दिया जाय। शिष्टता की एक विशेष असुविधा यही है कि सब लोग उसे समझ नहीं पाते। अशिष्टता की भाषा अपेक्षाकृत परिचित होती है, वही सोच रहा था कि इसी प्रकार के भाव का एक ही मुँह जैसा जवाब लिखना होगा। इसी समय उस सन्ध्या के अन्धकार में एक परिचित क्षुद्र-कण्ठ-स्वर सुनाई दिया एवं उसके बाद ही अपनी हथेली पर एक कोमल उष्ण-स्पर्श अनुभव किया। इतना उत्तेजित अन्यमनस्क था कि उसी समय, उसी स्वर और उसी स्पर्श को जानते हुए भी नहीं जान पाया।

परन्तु, एक क्षण पश्चात् ही वही स्वर धीरे-धीरे मेरे कानों में जाग्रत, वही सुधा-स्पर्श मेरी हथेली में सञ्जीवित हो उठा। बालिका एक-बार धीरे-धीरे पास आकर, कोमल स्वर में बोली—"पिताजी!" कोई उत्तर न पाकर मेरे दाहिने हाथ को पकड़, उठा, उसे एक-बार अपने कोमल कपोलों पर फिरा कर, फिर धीरे-धीरे घर लौट कर जाने लगी।

बहुत दिनों से प्रभा ने मुझे इस तरह नहीं पुकारा था एवं स्वेच्छा-पूर्वक आकर मुझसे इतना स्नेह नहीं किया था। इसीलिए आज उस स्नेह-स्पर्श से मेरा हृदय अचानक अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

कुछ क्षण बाद घर लौटकर देखा प्रभा बिछौने पर सो रही है। शरीर पीड़ित है, नेत्र कुछ बन्द हैं; दिन की समाप्त पर झरे हुए फूल के समान पड़ी हुई है।

मस्तक पर हाथ रखकर देखा, अत्यन्त उष्ण था; गर्म निःश्वास चल रही थीं, मस्तक की शिराएं दप्-दप् कर रहीं थीं।

समझ गया, बालिका आसन्न रोग के ताप से कातर हो, पिपासित-हृदय में एक बार पिता का स्नेह, पिता का आदर लेने गई थी, पिता उस समय 'जाहिर प्रकाश' के लिए एक खूब कड़े जवाब की कल्पना कर रहा था।

पास आकर बैठा। बालिका कोई बात न कह कर अपनी दोनों ज्वर-तप्त हथेलियों के बीच मेरे हाथ को खींचकर, उसके ऊपर मस्तक रखकर चुपचाप सोती रही।

जाहिरग्राम एवं आहिरग्राम के जितने अखबार थे सब को जलाकर फेंक दिया। कोई जवाब नहीं लिखा गया। हार मान कर इतना सुख कभी नहीं हुआ था।

बालिका की जिस समय माता मरी थी, उस समय उसे गोद में खींच कर ले लिया था; आज उसकी विमाता (सम्पादकी) की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त कर, उसे छाती से चिपटा कर लिए हुए कमरे में चला गया।

गल्प

बच्चे को जैसे ही बात करना आया, त्योंही वह बोला—"कहानी कहो।"

नानी ने कहना शुरू किया—"एक राज-पुत्र, कोतवाल का पुत्र, सौदागर का पुत्र—"

गुरू महाराज गरज कर बोले—"तीन चौक बारह।"

परन्तु उस समय उनकी अपेक्षा बड़ी हाँक दे रहा था राक्षस, 'हाँऊ माऊ खाँऊ'— पहाड़े की हुंकार बालक के कानों में नहीं पहुँची।

जो हितैषी थे, वे बालक को घर में बन्द-करके गम्भीर स्वर में बोले—"तीन चौक बारह, यह तो हुआ सत्य; और राजपुत्र, कोत-वाल का पुत्र, सौदागर का पुत्र—वे हुए झूठे, अतएव—"

बालक का मन उस समय उस मानस-चित्र के समुद्र को पार कर गया था, मान-चित्र में जिसका पता नहीं मिलता; तीन चौक बारह

उसके पीछे-पीछे दौड़ता जारहा है, परन्तु वहाँ पानी की थाह ही नहीं मिल पाती।

हितैषी सोचते हैं, इसी की दुष्टता (शरारत) है, बेंत की चोट से सुधार करना चाहिए।

नानी गुरु महाराज की गति देखकर चुप है। परन्तु विपत्ति विदा नहीं होना चाहती, एक जाती है तो दूसरी आती है। कथा-वाचक आकर आसन जमाकर बैठ गए। उन्होंने शुरू कर दी एक राज-पुत्र के बनवास की कथा।

जिस समय राक्षसी का नाक काटना चल रहा था, उस समय हितैषी बोले —"इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं है; जिसका प्रमाण राह-घाट मिलता है, वह है, तीन चौक बारह।"

उसी समय हनुमान छलाँग लगा गए आकाश में, इतने ऊँचे कि इतिहास उनके साथ किसी प्रकार होड़ नहीं कर सकता। पाठशाला से स्कूल में, स्कूल से कॉलेज में, बालक के मन का पुट-पाक से शोधन करना चलने लगा। परन्तु कितनी ही चतुराई की जाय, वह बात किसी प्रकार मरना नहीं चाहती—"कहानी कहो।"

२

इससे देखा जाता है, केवल शैशवावस्था में ही नहीं, सभी अवस्थाओं में मनुष्य कहानी में पला हुआ जीव है। इसी से पृथ्वी पर्यन्त मनुष्य के घर-घर में, युग-युग से मुँह-मुँह से लिखते-लिखते, कहानी ऐसी जम गई है कि वह मनुष्य के समस्त सञ्चयों को छोड़ गई है।

हितैषी एक बात को अच्छी तरह से विचार कर नहीं देखते, कहानी-रचने का नशा ही होता है सृष्टिकर्त्ता का सबसे अन्तिम नशा। उसका शोधन न कर पाने पर, मनुष्य का शोधन करने की आशा नहीं की जा सकती।

एक दिन वे अपने कारखाने के घर में अग्नि से पानी, पानी से

मिट्टी, बनाने में लग गए थे। सृष्टि उस समय पसीने से तर और भाप के भार से विकल थी। धातु और पत्थरों के पिण्डों की उस समय रुक-रुक कर चिनाई हो रही थी, चारों ओर माल-मसाला फैला था और दमादम पिसाई होरही थी। उस दिन विधाता को देखकर किसी प्रकार मन में यह नहीं समझा जा सकता था कि उनमें कहीं भी कुछ लड़कपन है। उस समय का काण्ड-कारखाना ऐसा था, जिसे कहते हैं—'सारवान।'

उसके बाद कब शुरू हुआ प्राणों का निर्माण। घास जग उठी, पेड़ उठ पड़े, पक्षी उड़ने लगे। कोई मिट्टी से बँधा रहकर आकाश की ओर अंजलि उठाए खड़ा रहा, कोई छुटकारा पाकर पृथ्वी पर अपने को खूब फैला कर चलने लगा, कोई पानी की यवनिका के नीचे मौन-नृत्य करता हुआ पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने में व्यस्त होगया, कोई आकाश में पंख फैलाकर सूर्यालोक की वेदी के नीचे गीतों की अर्घ्य-रचना में उत्सुक हुआ। तभी से पृथ्वी पर गिरने लगी विधाता के मनकी चंचलता।

इस प्रकार बहुत युग बीत गए। अचानक एक समय किसी ख्याल से सृष्टिकर्त्ता के कारखाने में उनंचास पवनों की पुकार हुई। उनमें से सबका अंश लेकर उन्होंने मनुष्य को गढ़ा। इतने दिन बाद आरम्भ हुई उनकी कहानी की पाली। बहुत समय बीत गया उनका विज्ञान में, शिल्प-कला में, इस बार उनका शुरू हुआ साहित्य।

मनुष्य को वे कहानी-ही-कहानी में विकसित करने लगे। पशु-पक्षी का जीवन हुआ आहार, निद्रा, सन्तान पालन; मनुष्य का जीवन हुआ कहानी। कितनी ही वेदना, कितनी ही घटना। सुख-दुःख, राग-विराग, भले-बुरे के कितने घात-प्रतिघात। इच्छा के साथ इच्छा का, एक के साथ दस का, साधना के साथ स्वभाव का, कामना के साथ घटना के संघात के कितने आवर्तन! नदी जैसे जल-स्रोत की धारा, मनुष्य वैसे ही कहानी का प्रवाह। इसीलिए परस्पर साक्षात्कार होने पर यह प्रश्न होता है—"क्या हुआ रे, क्या खबर है, उसके बाद?" इस

'उसके बाद' के साथ ही 'उसके बाद' की बुनावट से पृथ्वी भर के मनुष्यों को कहानी में गूँथा जारहा है। उसी को कहते हैं—'जीवन की कहानी', उसी को कहते हैं—'मनुष्य का इतिहास'।"

विधाता का रचा हुआ इतिहास और मनुष्य की रची हुई कहानी—इन दोनों बातों के मेल से मनुष्य का संसार है। मनुष्य के पक्ष में केवल अशोक की कहानी, अकबर की कहानी ही सत्य हों सो नहीं है; जो राज-पुत्र सात-समुद्र पार से सात राजाओं के धन-माणिक्य को ढूँढ़ने चलता है, वह भी सत्य है; और वह भक्ति-विमुग्ध हनुमान के सरल वीरत्व की बात भी सत्य है, जो हनुमान गन्धमादन पर्वत को उखाड़ लाने में सन्देह नहीं समझते। इस मनुष्य के पक्ष में औरङ्गजेब जिस प्रकार सत्य है, दुर्योधन भी उसी प्रकार सत्य है। किस के प्रमाण अधिक हैं, किस के प्रमाण कम, उस हिसाब से नहीं, केवल कहानी के हिसाब से कौन ठीक है; वही उनके पक्ष में सब की अपेक्षा सत्य है।

मनुष्य विधाता के साहित्य लोक में ही मनुष्य है; अस्तु, न वह वस्तु से गढ़ा गया है, न तत्त्व से—बहुत चेष्टा करके भी हितैषी किसी प्रकार यह बात मनुष्य को नहीं भुला पाते। अन्त में हैरान होकर, हितोपदेश के साथ कहानी की सन्धि स्थापित करने की वे चेष्टा करते हैं, परन्तु चिर-काल के स्वभाव-दोष से किसी प्रकार जोड़ नहीं मिल पाता। उस समय कहानी भी कट जाती है, हितोपदेश भी फिसल जाता है, कूड़ा-करकट जमने लगता है।

स्त्री का पत्र

श्रीचरण कमलेषु,

आज पन्द्रह वर्ष हमारे विवाह को होगए, आज तक तुम्हें चिट्ठी नहीं लिखी। सर्व समीप ही पड़ी रही—मुँह की बातें अनेकों सुनी हैं, मैंने भी सुनी हैं, चिट्ठी लिखने का अवसर कभी प्राप्त नहीं हुआ।

आज मैं तीर्थ करने के लिए श्रीक्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) में आई हूँ, तुम अपने आफिस के काम में लगे हुए हो। घोंघा के साथ उसके खोल का जो सम्बन्ध होता है, कलकत्ता के साथ वही सम्बन्ध तुम्हारा भी है; वह तुम्हारे शरीर और मन के साथ जुड़ गया है। इसीलिए तुमने आफिस में छुट्टी की दरख्वास्त नहीं दी। विधाता का वैसा ही अभिप्राय था; उन्होंने मेरी छुट्टी की दरख्वास्त मंजूर कर ली।

मैं तुम लोगों के घर की 'मँझली बहू' हूँ। आज पन्द्रह वर्षों के बाद इस समुद्र के किनारे खड़ी हुई जान पाई हूँ, अपने संसार (गृहस्थी) एवं जगदीश्वर (पति) के साथ

मेरा अन्य सम्बन्ध भी है। इसीलिए आज साहस करके इस चिट्ठी को लिख रही हूँ। यह तुम्हारी मँझली बहू की चिट्ठी नहीं है।

तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध भाग्य में जिसने लिखा है, उन्हें छोड़ कर जबकि उस सम्भावना की बात और कोई नहीं जानता था, उस शैशवावस्था में, मैं और मेरा भाई एक साथ ही सन्निपातिक ज्वर में पड़ गए थे। मेरा भाई मर गया, मैं बच गई। मुहल्ले की सभी स्त्रियाँ कहने लगीं: "मृणाल लड़की है न, इसीलिए वह बच गई, लड़का होने पर क्या बच सकती थी।" चोरी की कला में यमराज पक्के हैं, कीमती वस्तु पर ही उनका अधिक लोभ रहता है।

मेरा मरण नहीं है। इसी बात को अच्छी तरह समझ कर कहने के लिए यह चिट्ठी लिखने बैठी हूँ।

जिस दिन तुम्हारे दूर के रिश्ते के मामा तुम्हारे भाई नीरद को साथ लेकर देखने आए थे, उस समय मेरी आयु बारह वर्ष की थी। दुर्गम देहात में मेरा घर है, वहाँ दिन के समय भी सियार बोला करते हैं। स्टेशन से सात कोस तक छकड़ा गाड़ी में आने पर, शेष तीन मील कच्चे रास्ते पर पालकी करके तब हमारे गाँव में पहुँचा जाता है। उस दिन तुम लोगों को कैसी हैरानी हुई। उसके ऊपर हमारे बंगाल देश की रसोई—उस रसोई का प्रहसन मामा आज भी नहीं भूले हैं।

तुम्हारी बड़ी बहू के रूप का अभाव मँझली बहू से पूरा करने की तुम्हारी माँ की कठोर ज़िद थी। नहीं तो इतना कष्ट सहकर हमारे उस गाँव में तुम्हारा जाना क्यों होता? बंगाल देश में प्लीहा, यकृत्, अम्ल-शूल एवं कन्याओं के लिए तो किसी को भी खोज नहीं करनी पड़ती, वे सब स्वयं ही आकर ऐसी चिपक जाती हैं कि किसी प्रकार छोड़ना नहीं चाहतीं।

पिताजी की छाती धक्-धक् करने लगी, माँ दुर्गा के नाम का जप करने लगीं। शहर के देवता को देहात का पुजारी क्या देकर सन्तुष्ट

करेगा ? लड़की के रूप के ऊपर भरोसा था, परन्तु उस रूप का गौरव तो लड़की में नहीं है, जो व्यक्ति देखने को आये हैं; वे उसका जो मूल्य लगाएँगे, वही उसका मूल्य है। इसीलिए हजार रूप-गुण होने पर भी स्त्रियों का संकोच किसी प्रकार दूर नहीं होता।

समस्त घर का, यही क्यों, सम्पूर्ण मुहल्ले का यही आतङ्क मेरी छाती पर पत्थर के समान जम कर बैठ गया। उस दिन आकाश का सम्पूर्ण प्रकाश एवं संसार की सम्पूर्ण शक्ति, जैसे बारह वर्ष की एक देहाती लड़की को, दो परीक्षकों के दो जोड़ी नेत्रों के समक्ष बलपूर्वक उठाए रखने के लिए प्यादागीरी कर रही थी—मुझे कहीं भी छिपने के लिए जगह नहीं थी।

समस्त आकाश को रुलाती हुई वंशी बजने लगी—तुम्हारे मकान में आ पहुँची। मेरी समस्त त्रुटियों को विस्तारपूर्वक खतिया कर देख लेने पर भी गृहणियों के दल ने स्वीकार किया—'मैं बड़ी बहू से अधिक सुन्दरी हूँ।' वह बात सुनकर मेरी बड़ी जिठानी का मुख गम्भीर हो गया। परन्तु, मेरे रूप की आवश्यकता क्या थी—उसी को सोचती हूँ। रूप-वस्तु को यदि कोई प्राचीनकाल का पण्डित गंगा की मिट्टी से गढ़ता तो उसका आदर होता; परन्तु उसे तो विधाता ने अपने आनन्द के लिए गढ़ा है, इसीलिए तुम लोगों के धर्म के संसार (धार्मिक परिवार) में उसका मूल्य नहीं है।

मेरा जो रूप है, उस बात को भूलने में तुम्हें अधिक दिन नहीं लगे। परन्तु मेरी जो बुद्धि है उसे तुम लोगों को पग-पग पर स्मरण करना पड़ा है। यह बुद्धि मेरी इतनी स्वाभाविक है कि तुम लोगों के परिवार में इतने दिन कट जाने पर भी, वह आज तक टिकी हुई है। माँ मेरी इसी बुद्धि के लिए बहुत उद्विग्न थीं, स्त्रियों के पक्ष में यह एक बला ही है। जिन्हें बाधा मान कर चलना पड़ता है, वे यदि बुद्धि को मान कर चलना चाहें तो ठोकर खा-खा कर उनका कपाल फूटेगा ही।

परन्तु, क्या करूँ बोलो ? तुम लोगों के घर की बहू को जितनी बुद्धि की आवश्यकता थी, विधाता ने असावधान होकर मुझे उसकी अपेक्षा बहुत अधिक दे डाली थी, उसे मैं इस समय किसे लौटा दूँ ? तुम लोगों ने मुझे 'बड़ी-नानी' कह कर दोनों समय गालियाँ दी हैं। कटु-वाक्य असमर्थ के लिए सान्त्वना होते हैं; अतएव उन्हें मैं क्षमा करती रही।

मेरी एक वस्तु तुम्हारी घर-गृहस्थी से बाहर थी, उसे तुममें से कोई नहीं जानता था। मैं छिप कर कविता लिखा करती थी। वे खाक-धूल कुछ भी क्यों न हो, वहाँ तुम लोगों के भीतरी-महल की चहारदीवारी नहीं उठी थी। वहीं मेरी मुक्ति थी, वहीं मैं 'मैं' थी। मुझ में जो कुछ तुम लोगों की 'मँझली बहू' को छोड़ कर शेष था, उसे तुम लोगों ने पसन्द नहीं किया, पहिचान भी नहीं पाए; मैं जो कवि थी, सो इन पन्द्रह वर्षों तक भी तुम लोगों से पकड़ी नहीं जा सकी।

तुम लोगों के घर की प्रथम-स्मृति, सब की अपेक्षा जो मेरे मन में जग रही है, वह है तुम लोगों का 'ग्वाल घर' (गौशाला) । भीतरी महल की सीढ़ियों पर चढ़ते समय ठीक बगल के घर में ही तुम लोगों की गौएँ रहती हैं; सामने के आँगन के अतिरिक्त उनके लिए और हिलने-डुलने की जगह नहीं है। उस आँगन के कोने में उनके लिए चारा देने को लकड़ी की नाँदें हैं। प्रातःकाल नौकरों के लिए बहुत काम रहता है, भूखी गायें उस समय तक उन नाँदों के किनारों तक को चाट-चाट कर खुरच-खुरच कर साफ कर देती हैं। मेरे प्राण रो उठते। मैं देहाती लड़की हूँ—तुम लोगों के घर में जिस दिन नई-नई आई, उस दिन वे दो गायें एवं तीन बछड़े ही सम्पूर्ण शहर के बीच मेरे चिर-परिचित आत्मीय के समान मेरी आँखों में बैठ गए। जब तक 'नई बहू' रही, स्वयं न खाकर, छिपाकर उन्हें खिला देती; जब बड़ी हुई, उस समय गायों के प्रति मेरी प्रकट-ममता लक्ष्य कर, मेरे मजाक के रिश्ते के व्यक्ति मेरे गोत्र के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट करने लगे।

मेरी लड़की जन्म लेते ही मर गई। मुझे भी उसने साथ ही चलने के लिए जाते समय पुकारा था। वह यदि बच गई होती, तो वह मेरे जीवन में जो कुछ बड़ा, जो कुछ सत्य था, सबको ले आती; उस समय मँझली बहू से एकदम माँ बन बैठती। माँ—जो एक परिवार में रहती हुई भी सम्पूर्ण विश्व-परिवार की होती है। माँ होने के दुःख को अवश्य पाया, परन्तु माँ होने की मुक्ति को नहीं पा सकी।

याद है, अंग्रेज-डाक्टर आकर, हमारे अन्तःपुर को देखकर आश्चर्य चकित हुआ था एवं प्रसूति-गृह को देख, विरक्त होकर बक-झक करता रहा था। बाहर तुम लोगों का एक बगीचा है। घर में साज-सज्जा की वस्तुओं का अभाव नहीं। और अन्तःपुर जैसे पश्मीने के काम का उल्टा हिस्सा है; वहाँ कोई लज्जा नहीं, कोई ऐश्वर्य नहीं, कोई सज्जा नहीं। उस दिन बत्तियाँ झिमटिमाती हुई जल रही थीं; हवा चोर की भाँति प्रवेश कर रही थी, आँगन का कूड़ा कम नहीं होना चाहता था, दीवालों एवं फर्शों के समस्त धब्बे अक्षय होकर विराजमान थे। परन्तु, डाक्टर ने एक भूल की; उसने सोचा था—शायद यही सब वस्तुएँ हम लोगों को दिन-रात दुःख देती हैं। सचाई ठीक उल्टी थी; अनादर-वस्तु राख के समान होती है, वह राख अग्नि को भीतर ही भीतर दबाए रहती है, परन्तु बाहर से उसके ताप को नहीं समझने देती। आत्म-सम्मान जब घट जाता है, उस समय 'अनादर' को 'अन्याय' कहना मन को नहीं सुहाता। इसी लिए उसका कष्ट नहीं होता। तभी तो स्त्रियाँ दुःख अनुभव करने में भी लज्जा पाती हैं। मैं वही कहती हूँ—स्त्रियों को दुःख पाना ही होगा—यही यदि तुम्हारी व्यवस्था हो तो जहाँ तक सम्भव हो उन्हें अनादर में रखना ही अच्छा है; आदर से तो केवल दुःख की व्यथा ही बढ़ उठती है।

चाहे जैसे रक्खो, 'दुःख है'—यह बात, मन में सोचने की बात किसी दिन मन में नहीं आई। 'प्रसूति-गृह में मृत्यु मस्तक के समीप आकर खड़ी हो गई है',—यह भय ही मन को नहीं हुआ। जीवन ही हम लोगों

का क्या है, जो मृत्यु से भय करना ही पड़ेगा ? आदर से, यत्न से जिनके प्राणों का बन्धन सख्त किया गया है, मरना उन्हीं को अखरता है। उस दिन यम (मृत्यु) यदि मुझे पकड़ कर खींच लेता तो गीली मिट्टी होने पर जिस प्रकार बड़ी सरलता से घास के पौधे जड़ सहित उखड़ आते हैं, मैं उसी प्रकार उठ आती। बंगाली स्त्रियाँ तो बात-बात पर मरती चली जाती हैं। परन्तु, इस प्रकार मरने में बहादुरी क्या है ? मरने में लज्जा आती है, हम लोगों के लिए वह (मृत्यु) इतनी ही सरल है।

मेरी लड़की तो 'सन्ध्या-तारा' के समान क्षण-भर के लिए ही उदय होकर अस्त होगई। मैं फिर से नित्यकर्म एवं गौ-बछड़ों में लग गई। जीवन उसी प्रकार लुढ़कते-लुढ़कते अन्त तक कट जाता, आज तुम्हें चिट्ठी लिखने की आवश्यकता ही नहीं होती। परन्तु, वायु एक मामूली बीज को उड़ा लाकर पक्के दालान में एक वटवृक्ष का अंकुर जमा देती है; अन्त में उसी के द्वारा ईंट-काठ की छाती का पंजर विदीर्ण हो जाता है। मेरे परिवार के पक्के बन्दोबस्त के बीच जीवन का कण कहीं से उड़कर आ पड़ा, तत्पश्चात् हृदय विदीर्ण होना आरम्भ हुआ।

विधवा माता की मृत्यु के पश्चात् मेरी बड़ी जिठानी की बहिन विन्दु ने अपने चचेरे भाइयों के अत्याचार से, हम लोगों के मकान में अपनी बहिन के पास आकर जिस दिन आश्रय लिया, तुम लोगों ने उस दिन सोचा—'यह कहाँ की विपत्ति आगई ?' मेरा खराब-स्वभाव है; क्या करूँ कहो—देखा, तुम सभी लोग मन-ही-मन विरक्त हो उठे, इसीलिए इस निराश्रय लड़की के समीप मेरा सम्पूर्ण मन जैसे एकदम कमर बाँध कर खड़ा होगया। पराये मकान में, पराई अनिच्छा से आकर आश्रय लेना—वह कितना बड़ा अपमान है ? लाचार होकर वह भी जिसे स्वीकार करना पड़े, उसे क्या एक ओर धकेल कर रक्खा जाता है ?

उसके बाद देखी अपनी बड़ी जिठानी की दशा। वे अत्यन्त पीड़ित होकर बहिन को अपने पास लाईं थीं। परन्तु जब स्वामी की

अनिच्छा देखी, उस समय इस प्रकार सोचने लगीं—जैसे यह उनके लिए एक बड़ी बला है, जैसे इसे दूर कर पाने से ही वे बच सकेंगी। इस अनाथ बहिन को हृदय खोल कर प्रकट रूप से स्नेह प्रदर्शित करतीं, वह साहस उन्हें नहीं हुआ। वे पतिव्रता थीं।

उनके इस सङ्कट को देखकर मेरा मन और भी व्यथित हो उठा। देखा, बड़ी जिठानी ने सब लोगों को विशेष रूप से दिखा-दिखा कर बिन्दु के खाने-पीने की ऐसी मोटे प्रकार की व्यवस्था कर दी एवं घर में सब की दासी के रूप में इस प्रकार से नियुक्ति कर दी कि मुझे केवल दुःख ही नहीं, लज्जा भी अनुभव होने लगी। वे सब के सम्मुख यह प्रमाणित करने के लिए व्यस्त थीं कि हमारे परिवार ने बिना कुछ व्यय किए ही बिन्दु को बहुत कम मूल्य पर प्राप्त कर लिया है। वह काम बहुत देती है और खर्च के हिसाब से बहुत सस्ती पड़ती है।

हमारी बड़ी बहू के पिता के वंश में कुल को छोड़ कर और कुछ भी बड़ा (उच्च) नहीं था, रूप भी नहीं, रुपया भी नहीं। हमारे श्वसुर के हाथ-पाँव पकड़ कर किस प्रकार से तुम लोगों के घर में उनका विवाह हुआ, इसे तो सभी जानते हैं। वे अपने विवाह को, इस वंश के प्रति एक विषम अपराध कह कर ही अपने मन में सदैव से समझती आई हैं। इसीलिए सब बातों में स्वयं को यथासाध्य संकुचित समझती हुई तुम लोगों के घर में वे अत्यन्त कम जगह घेरे रहती हैं।

परन्तु, उनके इस साधु-दृष्टान्त से मुझे बड़ी मुश्किल हुई। मैं सब ओर से अपने को इतने असम्भव रूप से छोटा नहीं कर पाती थी। मैं जिसे अच्छा समझती हूँ और-किसी की खातिर उसे बुरा कह कर मन में रखना मेरा कर्म नहीं है—तुमने भी उसके अनेक प्रमाण पाए हैं।

बिन्दु को मैं अपने घर खींच लाई। दीदी बोलीं—"मझली बहू दरिद्र-घर की लड़की को माथे पर खाने को बिठा रही है।" मैंने जैसे एक बड़ी विपत्ति पैदा कर दी है, ऐसा सोचकर वे सब के पास नालिश

कर उठीं। परन्तु, मैं निश्चयपूर्वक जानती हूँ—वे मन-ही-मन बच गईं। इस समय दोष का बोझ मेरे ऊपर ही आ पड़ा। वे बहिन को स्वयं जो स्नेह नहीं दिखा पाती थीं, मुझे देकर वही स्नेह कर लेने पर उनका मन हल्का होगया। हमारी बड़ी बहू बिन्दु की आयु में दो-चार अङ्क निकाल देने की चेष्टा करतीं। परन्तु, उसकी आयु चौदह से कम नहीं थी, इस बात को चुपचाप कहने पर, अन्याय नहीं होगा। तुम तो जानते हो, वह देखने में इतनी ही बुरी थी कि गिर पड़ने पर वह यदि माथा फोड़ लेती तो घर के लोग फर्श के लिए ही चिन्तित होते। लिहाजा, पिता-माता के अभाव में कोई भी उसके विवाह के लिए चिन्तित नहीं था एवं उसके साथ विवाह करने के लिए मन को जोरदार बना लें ऐसे कितने लोग हो सकते थे।

बिन्दु बड़ी डरती-डरती मेरे पास आई। जैसे मेरे शरीर से उसका स्पर्श होने पर मैं सह नहीं सकूँगी। विश्व-संसार में जैसे उसके जन्म लेने की कोई शर्त (बात) नहीं थी, इसीलिए वह केवल मात्र पास से बचकर, आँखों से छिपकर चलती थी। उसके पिता के घर में उसके चचेरे भाइयों ने उसके लिए ऐसा एक कोना भी नहीं छोड़ देना चाहा था कि कोने में एक अनावश्यक वस्तु पड़ी रह सकती। अनावश्यक कूड़ा-करकट घर के आस-पास अनायास ही स्थान पा लेता है, क्योंकि आदमी उसे भूल जाता है; परन्तु अनावश्यक स्त्री एक तो अनावश्यक है और उसके ऊपर भी उसे भुलाना कठिन है, इसीलिए घूरे में भी उसका स्थान नहीं है। अस्तु, बिन्दु के चचेरे भाई जैसे संसार में परमावश्यक पदार्थ हों; यह कहने की जरूरत नहीं। परन्तु, वे सब मजे में हैं।

इसीलिए बिन्दु को जिस समय अपने घर बुला लाई, उसके हृदय में कम्पन होने लगा। उसके भय को देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरे घर में जो उसकी एक जगह थी; उस बात को मैंने बहुत आदर करके उसे समझा दिया।

परन्तु, मेरा घर केवल मेरा ही घर तो नहीं था। इसी कारण मेरा काम सरल नहीं हुआ। दो-चार दिन मेरे पास रहते ही उसके शरीर में लाल-लाल दाने से कुछ उठे। होंगी तो वे मरोली, अन्यथा कुछ और होंगी; तुमने कहा चेचक है। क्योंकि वे बूँद-जैसे थे। तुम्हारे मुहल्ले के एक अनाड़ी डाक्टर ने आकर कहा — "और दो-एक दिन बीते बिना ठीक नहीं कहा जा सकता।" परन्तु, उस दो-एक दिन का सब्र कौन सहता ? बिन्दु तो अपनी बीमारी की लज्जा से ही मरने जैसी होगई। मैंने कहा— "चेचक हो तो हो, मैं अपने उसी प्रसूति-गृह में उसे लेकर रहूँगी, और किसी को कुछ नहीं करना होगा"। इसी को लेकर मेरे ऊपर तुम लोग जिस समय सभी प्राण लेवा बन गए, यही क्यों, बिन्दु की दीदी ने भी जिस समय अत्यन्त विरक्ति अनुभव कर, करम-फूटी' लड़की को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव किया, उस समय उसके शरीर के सभी लाल दाग़ एकदम मिल (बैठ) गए। तुम लोग देखकर और भी चञ्चल हो उठे। बोले— "अवश्य ही चेचक बैठ गई है।' क्योंकि वह बिन्दु जो थी।

अनाहृत मनुष्य होने में एक बड़ा गुण है, उसके शरीर को एकदम अजर-अमर कहा जाता है। बीमारी होना ही नहीं चाहती; सभी सदर रास्ते एकबार में ही बन्द हो जाते हैं। रोग उसका उपहास कर गया; कुछ हुआ नहीं। परन्तु, यह खूब समझ लिया गया, पृथ्वी के बीच सब की अपेक्षा अकिञ्चन-मनुष्य को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। आश्रय की आवश्यकता उसे जितनी अधिक होती है, आश्रय की बाधा भी उसे उतनी ही विषम होती है।

मेरे सम्बन्ध में बिन्दु का भय जब नष्ट होगया, उस समय उसको एक-और बला ने पकड़ लिया। मुझे इस प्रकार प्यार करना शुरू कर दिया कि मुझे भय लगने लगा। प्यार की ऐसी मूर्त्ति संसार में तो किसी भी दिन नहीं देखी थी। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था, वह भी स्त्री-पुरुष के बीच की बात थी। मेरा जो रूप था, उसकी बावत अपने मन में सोचने

का कोई कारण बहुत समय से नहीं घटा था—इतने दिनों बाद वह रूप प्रकट हुआ इस कुरूप लड़की पर। मेरे मुँह की ओर देखते हुए उसके नेत्रों की लालसा फिर नहीं मिटती थी। कहती—"दीदी! तुम्हारे इस मुख को छोड़ कर मैं और कुछ नहीं देख पाती।" जिस दिन मैं अपने केशों को स्वयं बाँधती, उस दिन उसे बहुत अभिमान होता (अर्थात् वह रूठ जाती)। मेरे केशों का बोझ अपने दोनों हाथों से हिलाने-डुलाने में उसे बहुत अच्छा लगता। परन्तु, विन्दु मुझे परेशान करके नित्य ही कुछ-न-कुछ संवारा करती। लड़की मुझे लेकर एकबारगी पागल हो उठी।

तुम्हारे अन्तःपुर में कहीं भी जमीन एक-छटाँक भर (खाली) नहीं है। उत्तर की ओर दीवार के नीचे नाले के पास किसी प्रकार से एक जंगली पौधा उग आया था। जिस दिन देखती, उस जंगली पौधे के पत्ते रङ्गीन होकर चमक उठे हैं, उस दिन जानती, पृथ्वी पर वसन्त आगया है। मेरी गृहस्थी में इस अनाहूत लड़की का चित्त जिस दिन अचानक ही इसी प्रकार रङ्गीन हो उठा, उस दिन मैंने समझा—'हृदय-जगत् में भी एक वसन्त की हवा है—वह किसी स्वर्ग से आती है, गली के मोड़ से नहीं आती।'

विन्दु के प्यार के दुःसह वेग ने मुझे अस्थिर कर दिया था। किसी-किसी समय उसके ऊपर क्रोध आता—यह बात स्वीकार करती हूँ, परन्तु उसके इस प्यार के भीतर से मैंने अपना एक स्वरूप देखा, जिसे मैंने जीवन में और किसी दिन नहीं देखा था। वही मेरा मुक्त-स्वरूप था।

इधर, विन्दु जैसी लड़की का मैं जो इतना आदर-यत्न करती थी, यह तुम लोगों को बड़ी ज्यादती जैसा लग उठा। इसके लिए कानाफूँसी और बड़बड़ाहट का अन्त नहीं था। जिस दिन मेरे घर से बाजूबन्द चोरी गये उस दिन, उस चोरी में विन्दु का किसी प्रकार हाथ था—इस बात का आभास देने में तुम लोगों को लज्जा नहीं हुई। जिस समय

'स्वदेशी-आन्दोलन' में लोगों की 'घर-तलाशी' होने लगी, उस समय तुम लोग अनायास ही सन्देह कर बैठे कि विन्दु पुलिस की गुप्तचर-लड़की है। उसका और कोई प्रमाण नहीं था; केवल यही प्रमाण था कि, वह विन्दु है।

तुम लोगों के घर की दासियाँ उसका किसी प्रकार का काम करने में आपत्ति करतीं—उसके लिए किसी से उसका काम करने के लिए फरमायश करने पर, वे स्त्रियाँ भी संकोच से जैसे सिकुड़ जातीं। इन सब कारणों से उसके लिए मेरा खर्च बढ़ गया। मैंने विशेष रूप से एक अलग दासी रख ली। वह तुम लोगों को अच्छा नहीं लगा। विन्दु को मैं जो-सब कपड़े पहनने के लिए देती थी, उसे देखकर तुम इतना रोष करते थे कि मेरे 'हाथ-खर्च' के रुपये बन्द कर दिए। उसके दूसरे दिन से ही मैंने सवा रुपये के मूल्य का जोड़ा, मोटी कोरी किनारी की धोती पहनना आरम्भ कर दिया। और, मोती की माँ जिस समय मेरे जूठे-भात के थाल ले जाने को आई, उसे मना कर दिया। मैंने स्वयं ही आँगन के नल के नीचे जाकर, जूठा-भात बछड़े को खिलाकर बर्तन माँजे। एक दिन अचानक ही उस दृश्य को देखकर तुम बहुत खुश नहीं हुए। हमें खुशी न करने से भी चलेगा और तुम लोगों को खुश न करने पर भी नहीं चल सकेगा, यह सुबुद्धि आज तक मेरे घट में नहीं आई।

इस ओर तुम लोगों का रोष जिस प्रकार बढ़ने लगा, विन्दु की आयु भी उसी प्रकार बढ़ती जारही थी। उस स्वाभाविक व्यापार से तुम लोग अस्वाभाविक रूप से विवर्ण हो उठे। एक बात को सोचकर मुझे आश्चर्य होता है, तुम लोगों ने जबर्दस्ती विन्दु को अपने मकान से विदा क्यों नहीं कर दिया? मैं खूब समझती हूँ, तुम लोग मुझसे मन-ही-मन डरते थे। विधाता ने मुझे जो बुद्धि दी थी, भीतर-ही-भीतर उसकी खातिर किए बिना तुम नहीं रह सकते थे।

अन्त में विन्दु को अपनी शक्ति से विदा न कर पाने पर तुम

लोग प्रजापति-देवता की शरण में जा पहुँचे। बिन्दु का वर (दूल्हा) ठीक हुआ। बड़ी बहू ने कहा—"बच गए। माँ काली ने हमारे वंश के मुख की रक्षा की।"

वर कैसा था, सो नहीं जानती; तुम लोगों द्वारा सुना, सभी बातों में अच्छा है। बिन्दु मेरे पाँव पकड़ कर रोने लगी; बोली—"दीदी, मेरा फिर से विवाह क्यों करती हो ?"

मैंने उसे बहुत कुछ समझा कर कहा—"बिन्दु ! तू भय मत कर—सुना है, तेरा वर अच्छा है।"

बिन्दु बोली—"वर यदि अच्छा होगा तो मुझ में क्या है, जो मुझे वह पसन्द करेगा ?"

वर-पक्ष के लोगों ने तो बिन्दु को देखने के लिए आने का नाम भी नहीं लिया। बड़ी दीदी (जिठानी) इससे बड़ी निश्चिन्त होगईं।

परन्तु, दिन-रात बिन्दु के रुदन ने फिर नहीं थमना चाहा। उसे वह क्या कष्ट था, सो मैं जानती हूँ। बिन्दु के लिए मैंने दुनियाँ में बहुत झगड़े किए थे, परन्तु उसका विवाह रोका जाय, यह बात कहने का साहस मुझे नहीं हुआ। किस के जोर पर कहती ? मैं यदि मर जाऊँ तो उसकी क्या दशा होगी ?

एक तो लड़की, उस पर काली लड़की, किस के घर को चली, उसकी क्या दशा होगी, यह बात न सोचना ही अच्छा है। सोचने पर प्राण काँप उठते हैं।

बिन्दु बोली—"दीदी ! ब्याह के अभी पाँच दिन हैं, इस बीच मेरी मृत्यु नहीं होगी क्या ?"

मैंने उसे खूब डाँट दिया, परन्तु अन्तर्यामी जानते हैं, यदि किसी सहज भाव से बिन्दु की मृत्यु हो सकती, तो उससे मैं आराम अनुभव करती।

विवाह के एक दिन पहले विन्दु ने अपनी दीदी के पास जाकर कहा—"दीदी ! मैं तुम्हारी गौशाला में पड़ी रहूँगी, मुझसे जो कहोगी, वही करूँगी, तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, मुझे इस तरह फेंको नहीं।"

कुछ समय तक छिपे-छिपे दीदी की आँखों से आँसू बरसते रहे थे, उस दिन भी बरसे। परन्तु, केवल हृदय ही तो नहीं है, शास्त्र भी हैं। वे बोली—"जानती तो है विन्दी ! पति ही स्त्रियों की गति-मुक्ति सब होता है। भाग्य में यदि दुःख ही है तो कोई मिटा नहीं सकता।

असल बात यह थी, किसी ओर से कोई रास्ता नहीं था—विन्दु को विवाह करना ही होगा, उसके बाद जो हो सो हो जाय।

मैंने चाहा—ब्याह अपने ही मकान से हो। परन्तु, तुम लोग कह बंठे—वर के मकान से ही होना चाहिए—यही उनके कुल की प्रथा है।

मैं समझ गई, विन्दु के विवाह के लिए यदि तुम लोगों को खर्च करना पड़ेगा, तो वह तुम लोगों के गृह देवता को बिल्कुल सहन न होगा। इसी कारण चुप हो जाना पड़ा। परन्तु, एक बात तुम लोग कोई भी नहीं जानते। दीदी को जताने की इच्छा थी, परन्तु जताई नहीं, क्योंकि उससे वे भय के कारण मर जातीं—अपने कुछ गहने देकर मैंने विन्दु को सजा दिया था। समझती हूँ, दीदी की निगाहों में वे पड़ गए थे, परन्तु उन्होंने वे देखते हुए भी नहीं देखे। दुहाई है धर्म की, उसके लिए तुम लोग उन्हें क्षमा कर दो।

जाने से पूर्व विन्दु ने मुझसे चिपटते हुए कहा—"दीदी ! मुझे तुम लोगों ने क्या बिल्कुल ही त्याग दिया ?"

मैं बोली—"ना विन्दु ! तेरी कैसी भी दशा क्यों न हो, मैं तुझे अन्त तक नहीं त्यागूँगी।"

तीन दिन बीत गए। तुम्हारे ताल्लुके की प्रजा ने खाने के लिए तुम्हें जो भेड़ दी थी, उसे तुम्हारी जठराग्नि से बचा कर, मैंने अपने

पहली मंजिल की कोयला रखने की कोठरी में एक ओर ठहरा दिया था। सबेरे उठते ही मैं स्वयं उसे दाना खिला आया करती थी; तुम्हारे नौकरों पर दो एक दिन निर्भर रहकर देखा था, उसे खिलाने की अपेक्षा उसे खाने के लिए उन्हें अधिक लालसा थी।

उस दिन प्रातःकाल उसी कोठरी में घुसकर देखा, बिन्दु एक कोने में गठरी-सी बनी बैठी हुई है। मुझे देखते ही मेरे पाँव पकड़ कर उन पर लोटती हुई चुपचाप रोने लगी।

बिन्दु का पति पागल है।

"सच कहती हो बिन्दु ?"

"इतनी बड़ी झूठी बात तुमसे कह सकती हूँ, दीदी ? वे पागल हैं। श्वसुर की इस विवाह में राय नहीं थी—परन्तु, वे मेरी सास से यम के समान भय करते हैं। वे विवाह के पहले ही काशी चले गए। सास ने ज़िद करके अपने लड़के को ब्याह दिया।"

मैं वहीं चकरा कर कोयलों के ऊपर बैठ गई। स्त्रियों पर स्त्रियाँ दया नहीं करतीं। कहती हैं—'वह तो लड़की ही है न। लड़का पागल भले ही हो, है तो वह पुरुष ही।'

बिन्दु के पति को सहसा पागल नहीं समझा जा सकता, परन्तु किसी-किसी दिन तो वह ऐसा उन्मादित हो उठता है कि उसे घर में ताला बन्द करके रखना पड़ता है। विवाह की रात्रि को वह ठीक था, परन्तु रात्रि-जागरण आदि उत्पातों से दूसरे ही दिन उसका मस्तक एक-दम खराब हो उठा। बिन्दु मध्याह्नकाल में पीतल के थाल में भात खाने बैठी थी, अचानक उसके पति ने भात से भरे थाल को खींच, उठाकर फेंक दिया। अचानक कैसे उसके मन को लगा, बिन्दु स्वयं रानी रास-मणि है, नौकर ने अवश्य ही सोने का थाल चुराकर, रानी को उसने अपने थाल में भात खाने को दिया है। यही उसका क्रोध था। बिन्दु तो

भय से मर ही गई। तीसरी रात्रि को सास ने उसे जिस समय पति के कमरे में सोने को कहा, बिन्दु के प्राण सूख गए। सास उसकी प्रचण्ड है, उसे गुस्से में ज्ञान नहीं रहता। वह भी पागल है, परन्तु पूरी न कहे जाने पर भी और भी भयानक है। बिन्दु को घर में घुसना पड़ा। पति उस रात को ठण्डे (शान्त) थे। परन्तु भय से बिन्दु का शरीर जैसे काठ हो गया। पति जब सो गए, बहुत रात बीतने पर वह बड़े कौशल से भाग आई, उसका विस्तृत विवरण लिखने की आवश्यकता नहीं है।

घृणा और क्रोध से मेरा सम्पूर्ण शरीर जलने लगा। मैं बोली—"ऐसे धोखे का विवाह विवाह ही नहीं है। बिन्दु, तू जैसी थी वैसी ही मेरे पास रह, देखूँ तुझे कौन ले जा सकता है ?"

तुम लोग बोले—"बिन्दु झूँठ बात कहती है।"

मैं बोली—"वह कभी झूँठ नहीं बोलती"

तुम लोग बोले—"किस तरह से जाना ?"

मैं बोली—"मैं निश्चित रूप से जानती हूँ।"

तुम लोगों ने भय दिखाया—"बिन्दु की सुसराल वालों द्वारा पुलिस-केस करने पर मुश्किल पड़ जाएगी।"

मैं बोली—"धोका देकर पागल वर के साथ उसका विवाह कर दिया गया, यह बात क्या अदालत नहीं सुनेगी ?"

तुम लोग बोले—"तब क्या इसे लेकर अदालत करने जाओगी क्या ? क्यों, हमारा दावा किस पर है ?"

मैं बोली—"मैं अपने गहने बेचकर जो कर सकूँगी, करूँगी ?"

तुम लोग बोले—"वकील का घर भी नहीं बचेगा क्या ?"

इस बात का उत्तर नहीं था। मस्तक पर हाथ मार कर रह गई, उससे अधिक और क्या करती ?

उधर बिन्दु की ससुराल से उसके जेठ ने आकर बाहर बहुत ऊधम मचाया। वह बोला—"वह थाने में खबर देगा।"

मुझमें क्या ताकत है, सो नहीं जानती—परन्तु कसाई के हाथ से जिस गाय ने प्राणों के भय से तंग आकर मेरा आश्रय लिया है, उसे पुलिस की धमकी से फिर उसी कसाई के हाथ में लौटा देना होगा, यह बात किसी भी प्रकार मेरा मन नहीं मान सका। मैं स्पर्धा करती हुई बोली—"तो, दे दो थाने में खबर।"

यह कहकर मन में सोचा, बिन्दु को इसी समय अपने शयन-गृह में लाकर उसके साथ ही घर के भीतर ताला बन्द करके बैठ जाऊँ। ढूँढ़ने पर देखा—बिन्दु नहीं है। तुम लोगों के साथ मेरा वाद-प्रतिवाद जिस समय चल रहा था, उस समय बिन्दु स्वयं ही बाहर जाकर अपने जेठ के समीप उपस्थित होगई थी। समझ गई थी, इस मकान में यदि वह रहेगी तो मेरे लिए वह भारी विपत्ति खड़ी कर देगी।

बीच में ही भागकर बिन्दु ने अपना दुःख और भी बढ़ा लिया। उसकी सास का तर्क यही था कि उसका लड़का तो उसे खा नहीं डालेगा। बुरे पति के दृष्टान्त संसार में दुर्लभ नहीं हैं, इनके साथ तुलना करने पर उनका लड़का सोने का चाँद है।

हमारी बड़ी जिठानी बोलीं—"उसकी फूटी तकदीर है, उसके लिए दुःख करके क्या करें? वह पागल हो, छागल हो, पति तो है।"

कुष्ट-रोगी को गोद में लेकर उसकी स्त्री ने उसे वेश्या के घर स्वयँ पहुँचा दिया था—सती-साध्वी का वही दृष्टान्त तुम्हारे मन में जाग्रत हुआ था। संसार के बीच नीचतम् कापुरुषता की इस कहानी का प्रचार करते हुए तुम पुरुषों के मन में आज तक कोई संकोच नहीं होता; इसीलिए मनुष्य-जनम लेने पर भी बिन्दु के व्यवहार पर क्रोध कर पाए हो, तुम लोगों का मस्तक नीचा नहीं हुआ। बिन्दु के लिए मेरी छाती फट गई, परन्तु तुम लोगों के लिए मेरी लज्जा की सीमा नहीं रही। मैं तो देहात

की लड़की हूँ, उसके भी ऊपर तुम्हारे घर में आ पड़ी, भगवान् ने क्या समझकर मुझमें इतनी बुद्धि दे दी। तुम्हारी इन सब धार्मिक बातों को मैं किसी प्रकार नहीं सह पाई।

मैं अच्छी तरह जानती थी, मर जाने पर भी बिन्दु हम लोगों के घर नहीं आएगी। परन्तु, मैंने उसे विवाह से पहले वाले दिन आशा दी थी, कि उसे अन्त तक नहीं त्यागूँगी। मेरा छोटा भाई शरत् कलकत्ता के कालेज में पढ़ता था। तुम जानते ही हो कि वह किस प्रकार वालिन्टियरी (सब की सेवा) करता था, प्लेग के मुहल्लों में चूहे मारना, दामोदर की बाढ़ में पहुँचना, इन सब में उसका इतना उत्साह था कि लगातार दो बार वह एफ० ए० की परीक्षा में फेल हो जाने पर भी किञ्चित-मात्र विमुख नहीं हुआ। उसे बुलाकर मैंने कहा—"बिन्दु की खबर जिस प्रकार मुझे प्राप्त हो सके तुझे वही बन्दोबस्त कर देना होगा, शरत्! बिन्दु मुझे चिट्ठी लिखने का साहस नहीं करेगी, लिखने पर भी मैं उसे पाऊँगी नहीं।"

इस प्रकार के कार्य की अपेक्षा यदि उससे कहती—"बिन्दु को डकैती डालकर ले आओ किम्बा उसके पागल स्वामी का मस्तक फोड़ डालो" तो उसे अधिक खुशी होती।

शरत् के साथ बातचीत कर रही थी, उसी समय तुम कमरे में आकर बोले —"फिर क्या हङ्गामा मचा रही हो?"

मैं बोली—"वही जो सबसे पहले उठाया था, तुम लोगों के घर में आई हूँ परन्तु वह तो तुम्हीं लोगों की करतूत है।"

तुमने जिज्ञासा की—"क्या फिर कहीं बिन्दु को छिपा रक्खा है?"

मैं बोली—"बिन्दु यदि आ पाती तो उसे अवश्य ही लाकर छिपा रखती। परन्तु वह आएगी नहीं, तुम लोगों को कोई भय नहीं है।"

शरद् को मेरे पास देखकर तुम्हारा सन्देह और भी बढ़ उठा। मैं जानती थी, शरत् का हमारे घर में आना-जाना तुम्हें बिलकुल पसन्द नहीं था। तुम्हें भय था, उसके ऊपर पुलिस की दृष्टि है—किसी दिन वह किसी राजनैतिक मामले में पड़ जाएगा, उस समय तुम लोगों को भी साथ में फँसा देगा। इसीलिए मैं उसके लिए भैयादूज का टीका तक किसी दूसरे व्यक्ति के हाथों भिजवा देती थी, घर नहीं बुलाती थी।

तुमसे सुना विन्दु फिर भाग गई, इसीसे तुम लोगों के मकान में उसका जेठ ढूँढ़ने के लिए आया था। सुनकर मेरी छाती में शूल बिंध गया। हतभागिनी को कैसा असह्य कष्ट है, परन्तु कुछ करने को मार्ग नहीं था।

शरत् खबर लेने को दौड़ा। सन्ध्या के समय लौट आने पर मुझसे बोला—"विन्दु अपने चचेरे भाइयों के घर गई थी, परन्तु उन्होंने बहुत कलह मँचा कर उसी समय उसे ससुराल पहुँचा दिया। इस सम्बन्ध में उन्हें जो खर्च और गाड़ी किराये का दण्ड भुगतना पड़ा, उसका, उसके लिए वे अभी तक अपने मन में मर रहे हैं।"

तुम्हारी चाची श्रीक्षेत्र में तीर्थ करने के लिए जाते समय तुम लोगों के घर में आकर ठहरीं। मैं तुम लोगों से बोली—"मैं भी जाऊँगी।"

मेरे मन में अचानक धर्म का उदय हुआ है, यह देखकर तुम इतना प्रसन्न हो उठे कि कुछ भी आपत्ति नहीं की। यह बात भी मन में सोची होगी कि इस समय यदि कलकत्ता में रहूँगी तो फिर किसी दिन विन्दु को लेकर झगड़ा बांध वैठूँगी। मुझे लेकर बड़ी शंका थी।

बुधवार मेरे जाने का दिन था, रविवार को सब कुछ ठीक हो गया। मैंने शरत् को बुलाकर कहा—"जैसे भी हो सके, विन्दु को बुधवार को पुरी जाने वाली गाड़ी से तुझे ले चलना होगा।"

शरत् का मुख प्रफुल्ल हो उठा; वह बोला--"कोई डर नहीं दीदी ! मैं उसे गाड़ी में बैठा कर पुरी तक चला जाऊँगा—मुफ्त में ही जगन्नाथपुरी के दर्शन हो जावेंगे।"

उसी दिन सन्ध्या के समय शरत् फिर आया। उसका मुख देखते ही मेरी छाती बैठ गई। मैं बोली--"क्या है शरत् ? समझती हूँ सुविधा नहीं हुई ?"

वह बोला--"नहीं।"

मैं बोली--"राजी नहीं कर पाया ?"

वह बोला--"अब जरूरत भी नहीं है। कल रात को वह कपड़ों में आग लगा कर आत्महत्या करके मर गई। मकान के जिस बाल-सखा के साथ मेरा स्नेह था, उससे खबर पाई--'तुम्हारे नाम वह एक चिट्ठी रख गई थी, परन्तु वह चिट्ठी उन लोगों ने नष्ट कर दी।'

जाने दो, शान्ति हुई।

समाज के बुजुर्ग लोग जल उठे। कहने लगे—"लड़कियों का कपड़ों में आग लगा कर मरना एक फैशन होगया है।"

तुम लोगों ने कहा--"यह सब नाटक किया गया ! वही होगा। परन्तु, नाटक का तमाशा केवल बंगाली स्त्रियों की साड़ी के ऊपर ही क्यों होता है, किसी बंगाली वीर पुरुष की धोती के ऊपर क्यों नहीं होता, इसे भी तो विचार कर देखना उचित है।

विन्दु का भाग्य ऐसा ही फूटा है। जितने दिन जीवित रही, रूप-गुण में कोई यश नहीं पाया—मरने के समय ही कुछ सोच-समझ कर एक ऐसे नवीन ढङ्ग से मर जाती कि देश के पुरुष प्रसन्न हो, हाथ से ताली बजाकर उसकी कुछ तारीफ करते ! मर कर भी लोगों को अप्रसन्न कर गई।

दीदी घर के बीच छिप कर रोईं। परन्तु, उस रुदन के बीच एक

सान्त्वना थी। कुछ भी क्यों न हुआ हो, तो भी रक्षा हो गई थी। मर ही तो गई है, जीवित रहने पर क्या नहीं हो सकता था।

मैं तीर्थ में आई हूँ। विन्दु को फिर आने की जरूरत नहीं हुई, परन्तु मेरी आवश्यकता थी।

दुःख कहकर संसार में जिसे समझा जाता है, तुम लोगों के परिवार में वह मेरे लिए नहीं था। तुम लोगों के घर में खाने-पहिरने की कमी नहीं; तुम्हारे दादा का चरित्र कैसा भी हो, तुम्हारे चरित्र में ऐसा कोई दोष नहीं है जिससे विधाता को बुरा कह सकूं। यदि कहीं तुम्हारा स्वभाव तुम्हारे दादा की भाँति ही होता तो वैसा होने पर भी मोटे तौर पर मेरे दिन इसी प्रकार कट जाते एवं मेरी सती-साध्वी जिठानी की भाँति पति-देवता को दोष न देकर, विश्व-देवता को ही मैं दोष देने की चेष्टा करती। अतएव तुम्हारे नाम पर मैं कोई भी नालिश दायर नहीं करना चाहती—मेरी यह चिट्ठी उस [उद्देश्य] के लिए नहीं है।

परन्तु मैं फिर तुम लोगों के उस सत्ताईस-नम्बर, माखन बड़ाल की गली में नहीं लौटूँगी। मैंने विन्दु को देखा है। संसार के बीच स्त्री का परिचय क्या है, उसे मैं पा चुकी हूँ। अब फिर मुझे जरूरत नहीं है।

उसके बाद भी देखा है, वह (विन्दु) स्त्री अवश्य थी, तो भी भगवान ने उसे नहीं त्यागा। उसके ऊपर तुम लोगों का कितना भी जोर क्यों न रहा हो, उस जोर का अन्त भी था। वह अपने हतभाग्य मानव-जन्म की अपेक्षा बड़ी थी। तुम्हीं लोग जैसे अपनी इच्छानुसार अपने दस्तूर के मुताबिक उसके जीवन को बहुत समय तक पाँवों के नीचे दबाए रक्खोगे, तुम लोगों के पाँव इतने लम्बे नहीं हैं। मृत्यु तुम लोगों की अपेक्षा बड़ी है। उसी मृत्यु के बीच वह महान् है—वहाँ विन्दु केवल बंगाली घर की स्त्री नहीं है, केवल चचेरे भाइयों की बहिन नहीं है; केवल अपरिचित पागल पति की प्रवञ्चिता स्त्री नहीं है। उस जगह वह अनन्त है।

उसी मृत्यु की वंशी इस बालिका के भग्न हृदय के भीतर से मेरे जीवन के यमुना तट पर जिस दिन बज उठी, उस दिन पहले-पहल मेरी छाती के बीच जैसे बाण बिंध गया। विधाता से जिज्ञासा की—'संसार के बीच जो-कुछ सब की अपेक्षा तुच्छ है, वही सबकी अपेक्षा कठिन क्यों है ?' इस गली के बीचो-बीच चारों ओर दीवार से घिरा हुआ निरानन्द का अत्यन्त सामान्य बुद्बुद् ऐसी भयङ्कर-बाधा क्यों है ? तुम्हारा विश्व-जगत् अपनी छै ऋतुओं का सुधा-पात्र हाथ में लिए चाहे किसी भी प्रकार से क्यों न पुकारे, एक क्षण के लिए क्यों मैं इस अन्तःपुर की एकमात्र चौखट से पार नहीं हो पाती ? तुम्हारे ऐसे भुवन में अपने ऐसे जीवन को लेकर किसलिए अत्यन्त तुच्छ ईंट-काठ की चहारदीवारी में मुझे तिल-तिल करके मरना होगा ? कितनी तुच्छ है मेरी यह प्रतिदिन की जीवन-यात्रा; कितने तुच्छ हैं इसके समस्त बँधे हुए नियम, बँधे हुए अभ्यास, बँधी हुई बोली, इसकी सम्पूर्ण बँधी हुई मार—परन्तु अन्त तक इसी दीनता के नागपाश बन्धन की ही होगी जीत—और हार होगी तुम्हारे स्वयं निर्मित इस आनन्द लोक की ?

परन्तु, मृत्यु की वंशी बजने लगी—कहाँ है राजमि-स्त्री की गढ़ी हुई दीवार, कहाँ है तुम लोगों के अपने कानूनों से गढ़ा हुआ काँटों का बेड़ा ! कौन-सा दुःख, कौन-सा अपमान मनुष्य को बन्दी बना कर रख सकता है ! यही तो मृत्यु के हाथ में जीवन की जय-पताका उड़ रही है। ओरी मँझली बहू, तुझे भय नहीं है ! तेरी मँझली बहू की केंचुल को छिन्न होते हुए एक भी पल नहीं लगेगा।

तुम लोगों की गली से अब मैं भय नहीं करती। मेरे सम्मुख आज नील समुद्र है, मेरे मस्तक के ऊपर आषाढ़ के मेघ-पुंज हैं।

तुम लोगों ने अभ्यास के अन्धकार में मुझे ढक रक्खा था। क्षण भर के लिए विन्दु ने आकर उस आवरण में छेद कर मुझे देख लिया। वही स्त्री अपनी मृत्यु के द्वारा मेरे आवरणों को प्रारम्भ से अन्त तक

फाड़ कर चली गई। आज बाहर आकर देखा, अपना गौरव रखने के लिए और जगह नहीं है। मेरा यह अनाहत रूप जिसकी आँखों को भला लगता है, वही 'सुन्दर' सम्पूर्ण आकाश से मेरी ओर देख रहा है। इस बार मर रही है मँझली बहू।

तुम सोचोगे मैं मरने जारही हूँ—भय नहीं, ऐसी पुरानी हँसी तुम लोगों के साथ मैं नहीं करूँगी। मीराबाई भी तो मेरी ही भाँति स्त्री थी—उसकी जंजीर भी तो कम भारी नहीं थी, उसे तो बचने के लिए मरना नहीं पड़ा। मीराबाई ने अपने गीत में कहा था—"पिता छोड़ा, माँ छोड़ी, छोड़े जो जिस जगह थे, मीरा परन्तु लगी ही रही, प्रभु—इसलिए उनका जो होना हो वह हो।'*

इस लगन का रहना ही तो बचा रहना है। मैं भी बचूँगी। मैं बच गई।"

तुम लोगों के चरणतलाश्रय से विच्छिन्न-
"मृणाल"

---

*भाई छोड़या, बन्धु छोड़या, छोड़या सगा सोई।
'मीरा' राम लगण लागी, होणी होय सो होई॥

चोरी का धन

महाकाव्य के युग में स्त्री प्राप्त होती थी पौरुष के जोर से; जो अधिकारी होता वही रमणी-रत्न को प्राप्त करता। मैंने प्राप्त की थी कापुरुषता से, यह बात मेरी स्त्री को जानने में देर लगी। परन्तु, साधना की है विवाह के पश्चात्; जिसे धोखा देकर, चोरी करके पाया है, उसका मूल्य देना पड़ा है दिन-प्रतिदिन।

दाम्पत्य का अधिकार प्रमाणित करना पड़ता है प्रतिदिन नवीन प्रकार से---अधिकांश पुरुष भूल जाते हैं इस बात को। उन्होंने शुरू-आत में ही कस्टम-हाउस से माल छुड़ा लिया है समाज का छुटकारा-पत्र दिखाकर, उसके बाद से रह रहे हैं बेपरवाह! जैसे पा लिया है पहरे वाले का सरकारी प्रताप ऊपर वालों (अफसरों) के दिए हुए तमगे के जोर से; वर्दी को खोलते ही बड़े अपात्र लगेंगे वे सब।

विवाह चिर-जीवन की कीर्त्तन-गान है; उसकी 'टेक' एक ही है, परन्तु सङ्गीत का

विस्तार प्रतिदिन नए-नए पर्याय में हैं। इस बात को अच्छी तरह समझा है सुनेत्रा के पास से ही। उसमें है प्यार का ऐश्वर्य, समाप्त होना नहीं चाहता है उसका समारोह; ड्योढ़ी पर चारों प्रहर बजती है उसकी सराहना-रागिनी। आफिस से लौट कर एक दिन देखा मेरे लिए सजाकर रखा है बर्फ युक्त फलों के रस का शर्बत, रंग देखते ही मन चौंक उठा; उसके समीप ही छोटे चाँदी के थाल में फूलों का गजरा, घर में घुसने से पहले ही गन्ध आती है अगवानी के लिए। फिर किसी दिन देखा आइस-क्रीम की मशीन में जमाया हुआ लीची के रस से मिश्रित अमरस का एक प्याला, और पिरिच में एकमात्र सूर्यमुखी का फूल। बात सुनने में बड़ी कुछ नहीं, परन्तु अनुभव हो रहा है कि दिन-दिन नवीन प्रकार से वह अनुभव कर रही है मेरा अस्तित्व। यह पुराने को नए अनुभव करने की शक्ति कलाकार की है और, 'इतरेजनः' प्रतिदिन चला करते हैं दस्तूर (रिवाज) की लकीर पर। प्यार की प्रतिभा सुनेत्रा की नवनवो-न्मेषशालिनी-सेवा में है। आज मेरी लड़की अरुणा की आयु सत्रह वर्ष की है, अर्थात् ठीक जिस आयु में सुनेत्रा का विवाह हुआ था। उसकी अपनी आयु अड़तीस वर्ष है, परन्तु यत्नपूर्वक साज-सज्जा करने को वह जानती है पूजा के लिए नैवेद्य-सजाना, अपने उत्सर्ग करने का आह्निक-अनुष्ठान।

सुनेत्रा को अच्छी लगती है शान्तिपुर की सफेद साड़ी कालीपाड़ वाली। खद्दर-प्रचारकों के धिक्कार को बिना प्रतिवाद के स्वीकार कर लिया है, किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं करती है खद्दर को। वह कहती है "देशी जुलाहों का हाथ, देशी जुलाहों का करघा, यही मेरा आदरणीय है। वे शिल्पी है, उनकी पसन्द का है सूत, मेरी पसन्द है सारे कपड़े को लेकर।" असल बात, सुनेत्रा समझती है हलके सादे रङ्ग की साड़ी पर सभी रंगों का इशारा सहज ही खप सकता है। वह उसी कपड़े को नवीनता देती है अनेकों आभासों से, मन को नहीं लगता कि वह सजी है।

वह समझती है, मेरे अवचेतन मन का दिगन्त उद्भासित होता है उसके साज से—मैं खुश होता हूँ, जानता नहीं क्यों खुश होता हूँ।

प्रत्येक मनुष्य में एक 'अहं' होता है, वही अपरिमेय रहस्य का असीम मूल्य प्रकट होता है प्यार में। अहंकार का जाली-पैसा तुच्छ हो जाता है इसके समीप। सुनेत्रा ने अपने मन-प्राण से इस परम-मूल्य को दिया है मुझे, आज इक्कीस वर्षों से। उसके शुभ्र-ललाट कुंकुम-बिन्दी के बीच प्रतिदिन लिखी जाती है अक्लान्त विस्मय की वाणी। उसके अखिल-विश्व के मर्म-स्थान पर अधिकार करता आया हूँ—मैं, उसके लिए मुझे और कुछ नहीं होना पड़ा, साधारण जगत का जो-कुछ होने के अतिरिक्त साधारण का ही असाधारण रूप में परिष्कार करता है—प्यार। शास्त्र कहते हैं—'अपने को जानो।' आनन्द में अपने को ही जानता हूँ, और एक व्यक्ति जबकि प्रेम द्वारा जानता है मेरे आपे को।

२

पिताजी थे किसी प्रतिष्ठित बैंक के अन्यतम अधिनायक, उसी का एक हिस्सेदार होगया मैं। जिसे कहते हैं सोता हुआ हिस्सेदार, बिल्कुल वैसा नहीं। आगे-पीछे लगामें देकर जोत दिया गया था मुझे आफिस के काम में। मेरे मन और शरीर के साथ इस काम का मेल नहीं बैठता। इच्छा थी, वन-विभाग में कहीं भी परिदर्शक के पद को हासिल करके रहूँ, खुली हवा में दौड़-धूप करूँ, शिकार का शौक मिटालूँ। पिताजी की दृष्टि थी प्रतिष्ठा की ओर; बोले—"जो काम मिला है, वह सहज ही नहीं मिलता बंगाली के भाग्य से।" हार माननी पड़ी। उसके सिवाय मन को लगता है पुरुष की प्रतिष्ठा की वस्तु स्त्रियों के निकट कीमती है। सुनेत्रा के बहनोई अध्यापक थे, इम्पीरियल सर्विस थी उनकी, उसने उनका अन्तःपुर में मस्तक ऊँचा उठा रक्खा था। यदि जंगली इन्सपैक्टर साहब होकर, हैट पहिन कर बाघ-भालू के चमड़े

से जमीन को ढंक देता, तो भी मेरे शरीर का गुरुत्व कम ही रहता, उसके साथ ही कम होता मेरे पद का गौरव अन्य पाँच पदस्थ पड़ौसियों की तुलना में। कौन जानता है, इस लाघवता (निम्नता) से स्त्रियों का आत्माभिमान कुछ खिन्न जान पड़ता है।

इधर डेस्क से बंधे स्थावरत्व के दबाव से देखते-देखते मेरे यौवन की धार मोंथरी होती आ रही है। अन्य कोई पुरुष होता तो उस बात को निश्चिन्त मन से भूलकर पेट की परिधि-विस्तार को बुरी बात समझ कर गणना नहीं करता। मैं वैसा नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, सुनेत्रा मुग्ध हुई थी केवल मेरे गुणों पर नहीं, मेरे शरीर-सौष्ठव पर। विधाता की स्वनिर्मित वरमाला को पहिन कर एक दिन उसे वरण किया था, निश्चित रूप से उसकी आवश्यकता थी प्रतिदिन की अभ्यर्थना में। आश्चर्य यही है कि सुनेत्रा का यौवन आज तक रहा अक्षुण्ण, देखते-देखते मैं ही जा रहा हूँ ढलाव की ओर——केवल बैंक में जमा हो रहे हैं रुपये।

हमारे मिलन के प्रथम अभ्युदय को फिर एक बार प्रत्यक्ष आँखों के सामने लाई हमारी लड़की अरुणा। हमारे जीवन का वह उपारुणराग दिखाई दिया उसके तारुण्य के नवप्रभात में। देखकर पुलकित हो उठा सम्पूर्ण मन। शैलेन की ओर दृष्टि उठाकर देखता हूँ, मेरी उस दिन की आयु उसके शरीर में अविर्भूत हुई है। यौवन की वही प्रिय शक्ति, वही अजस्र प्रफुल्लता, फिर क्षण-प्रतिक्षण प्रतिहत दुराशा से म्लायमान उत्साह की उत्कण्ठा। उसदिन मैं जिस मार्ग पर चल रहा था, वही मार्ग फिर सामने है, उसी प्रकार से अरुणा की माता के मन को वश में करने के लिए अनेकों कारणों की वह सृष्टि कर रहा है, केवल मैं ही यथेष्ट लक्ष्य-गोचर नहीं हूँ। दूसरी ओर अरुणा जानती है मन-ही-मन उसके पिता समझते हैं लड़की के दर्द को। किसी-किसी दिन क्या जाने कौन दोनों नेत्रों में अदृश्य आँसुओं की करुणा ले चुपचाप आ बैठता है

मेरे पाँवों के पास मोढ़े पर। उसकी माँ निष्ठुर हो सकती है, मैं नहीं हो सकता।

अरुणा के मन की बात उसकी माँ नहीं समझती, ऐसा नहीं है; परन्तु उसका विश्वास है, यह सभी 'प्रभाते मेघडम्बरम्' का समय होकर बिला जायेगा। इसी स्थान पर सुनेत्रा के साथ मेरे मत का अनैक्य (मतभेद) है। भूख मिटाए बिना भूख मारी नहीं जा सकती, सो नहीं है, परन्तु दूसरी बार जब पत्तल पड़ेगी, उस समय हृदय की रसना (जीभ) का, नवीन प्रेम का स्वाद मर जाएगा। दोपहर को सुबह की तान छेड़ने पर, फिर वह नहीं लगती। अभिभावक कहेंगे विवेचना (विचार) करने की आयु होने से पहले, उसके बाद, इत्यादि। हाय रे, विचार करने की आयु प्रेम की आयु के उल्टी ओर रहती है।

कुछ दिन पहले ही आया था 'भरा बादर माह भादर'* घन-वर्षा की आड़ में कलकत्ते के ईंट-काठ के मकान मुलायम हो गये, शहर की प्रखर-मुखरता अश्रु-गद्‌गद्‌ कण्ठस्वर की भाँति वाष्पाकुल होगई। उसकी माँ समझती अरुणा मेरी लाइब्रेरी के कमरे में परीक्षा की पढ़ाई में प्रवृत्त है। एक पुस्तक लेने के लिए जाने पर देखा, मेघाच्छन्न दिनान्तर की सजल छाया में खिड़की के सामने वह चुपचाप बैठी है; उस समय बाल नहीं बांधे थी, पुरवैया हवा की बौछारें आकर लग रहीं थीं उसके खुले बालों पर।

सुनेत्रा से कुछ नहीं कहा। उसी समय शैलेन को लिख देना चाहा निमन्त्रण-पत्र। भेज दी अपनी मोटर-गाड़ी उसके मकान पर। शैलेन आया, उसका अचानक आविर्भाव सुनेत्रा को पसन्द नहीं, इसे समझना कठिन नहीं था। मैं शैलेन से बोला—"गणित में मेरा जितना दखल है, उससे आजकल की फिज़िक्स की थाह नहीं मिलती, इसी से

*भादों मास का मदमाता मेघ

तुम्हें बुला भेजा है, कोअण्टम्-थ्योरी को यथासाध्य समझ लेना चाहता हूँ, मेरी पुरानी विद्या की धार अत्यन्त भोथरी हो गई है।"

कहना व्यर्थ है, विद्या की चर्चा बहुत दूर तक नहीं बढ़ी। मेरा निश्चित विश्वास है, अरुणा ने अपने पिता की चतुराई स्पष्टतः पकड़ ली और मन-ही-मन कहा—'ऐसे आदर्श-पिता किसी अन्य परिवार में आज तक अवतीर्ण नहीं हुए।'

कोअण्टम् थ्योरी के ठीक शुरू होते ही बज उठी टेलीफोन की घण्टी—हड़बड़ाकर उठता हुआ बोला—"जरूरी काम की पुकार है। तुम लोग एक काम करो, तब तक पार्क की टेनिस खेलो, छुट्टी पाते ही फिर लौट आऊँगा।"

टेलीफोन से आवाज आई—"हलो, यह क्या बारह सौ अमुक नम्बर है ?"

मैं बोला—"नहीं' यहाँ का नम्बर सात सौ अमुक है।"

दूसरे ही क्षण नीचे के कमरे में जाकर एक पुराना समाचार-पत्र लेकर पढ़ना शुरू कर दिया, अँधेरा हो आया, जलादी बत्ती।

सुनेत्रा आई कमरे में। अत्यन्त गम्भीर मुख। मैं हँस कर बोला—"मिटिअरॉलॉजिस्ट तुम्हारा मुख देते ही आँधी का सिगनल दे देता।"

मजाक में योग न देकर सुनेत्रा बोली—"क्यों तुम शैलेन को इस प्रकार प्रश्रय देते हो बार-बार ?"

मैं बोला—"प्रश्रय देने का लोक अदृश्य है, उसी की अन्त-रात्मा में।

"उनका मिलना-जुलना कुछ दिन बन्द कर देने से यह लड़कपन बीत जायगा अपने आप।"

"लड़कपन के लिए कसाईगीरी करने जाऊँगा क्या ? दिन बीतेंगे, आयु बढ़ेगी, ऐसा लड़कपन फिर तो नहीं पाया जा सकेगा किसी समय।"

"तुम ग्रह-नक्षत्रों को नहीं मानते, मैं मानती हूँ। वे लोग मिल नहीं सकेंगे।"

"ग्रह-नक्षत्र कहाँ किस प्रकार मिलते हैं, दिखाई नहीं देते, परन्तु वे दोनों व्यक्ति जो मिल चुके हैं हृदय-ही-हृदय में, उसे देखा जा सकता है खूब स्पष्ट तौर से।"

"तुम नहीं समझोगे मेरी बात। जिस समय हम लोग जन्म लेते हैं, उसी समय हम लोगों का वास्तविक साथी निश्चित हो जाता है, मोह की छलना से और-किसी को यदि स्वीकार कर लिया जाय तो उसी में घटता है अज्ञात अ-सतीत्व। अनेकों दुखों, विपत्तियों में उसका दण्ड है।"

"यथार्थ दोष को पहिचानें किस प्रकार?"

"नक्षत्रों के अपने हाथ से हस्ताक्षर—करने की दलील है।"

३

अब छिपाव नहीं चलेगा।

मेरे श्वसुर थे अजितकुमार भट्टाचार्य। खानदानी पण्डित-वंश में उनका जन्म हुआ था। बाल्यकाल कटा था चतुष्पाठी की आबोहवा में। बाद में कलकत्ते आकर कॉलेज से ली थी एम० ए० की डिग्री गणित में। फलित:ज्योतिष में उनका जैसा विश्वास था, वैसी ही व्युत्पत्ति। उनके पिता थे पक्के नैयायिक, ईश्वर उनके मत से असिद्ध; मेरे श्वसुर भी देव-देवी कुछ भी मानते नहीं थे, उसका प्रमाण पा चुका हूँ। उनका समस्त बेकार विश्वास भीड़-किए आ पड़ा था ग्रह-नक्षत्रों के ऊपर, एक प्रकार से दकियानूसी ही कहा जायगा। इसी घर में जन्मी थी सुनेत्रा; बाल्य-काल से ही उसके चारों ओर ग्रह-नक्षत्रों का कड़ा पहरा था।

मैं था अध्यापक का प्रिय छात्र, सुनेत्रा को भी उनके पिता ने दी थी शिक्षा। परस्पर मिलने का सुयोग हुआ था बार-बार। सुयोग

व्यर्थ नहीं हुआ, यह खबर बेतार-विद्युत्वार्त्ता से मेरे निकट व्यक्त हो चुकी थी। मेरी सास का नाम था विभावती। प्राचीनकाल की चहार-दीवारी के बीच उनका जन्म हुआ, परन्तु पति के संसर्ग से उनका मन था संस्कारमुक्त, स्वच्छ। पति के साथ विभिन्नता यही थी कि ग्रह-नक्षत्रों को वे बिल्कुल ही नहीं मानती थीं, मानती थीं अपने इष्ट देवता को। इसे लेकर पति से एक दिन मजाक करती हुई बोली—"डरते-डरते तुम पियादों के समीप सलाम ठोंकते फिरते हो, मैं मानती हूँ स्वयं राजा को।"

पति बोले—"ठगाई जाओगी। राज रहे या न रहे तो भी, लाठी रक्खे निश्चित रूप से रहेगा पियादों का दल।"

सास–ठकुरानी बोलीं—"ठगा जाना भी अच्छा है। उसके लिए ड्योढ़ी के दरबार में जाकर फटे-जूतों के पास मस्तक नहीं झुका सकूँगी।"

मेरी सास मुझ से बहुत स्नेह करतीं थीं। उनके समीप मेरे मन की बात खुली रहती। अवकाश जानकर एक दिन उनसे बोला—"माँ, तुम्हारे लड़का नहीं, मेरी माँ नहीं। लड़की देकर मुझे अपने लड़के का स्थान दो। तुम्हारी सम्मति पा लेने के बाद अध्यापक के पाँव पकड़ूँगा।"

वे बोलीं—"अध्यापक की बात बाद में होगी बेटे, पहले अपनी जन्मपत्री लादो मेरे पास।"

ला दी। वे बोलीं—"नहीं होगा। अध्यापक की राय नहीं होगी। अध्यापक की लड़की भी अपने पिता की शिष्या है।"

मैंने जिज्ञासा की—"लड़की की माँ ?"

बोलीं—"मेरी बात मत कहो। मैं तुम्हें जानती हूँ, अपनी लड़की के मन को भी जानती हूँ, उसे अधिक जानने के लिए नक्षत्रलोक तक भागने का समय नहीं है मुझे।"

मेरा मन हो उठा विद्रोही। बोला—"इस प्रकार की अवास्त-

विक-बाधा मानना अन्याय है। परन्तु, जो अवास्तव है उसके शरीर पर घाव नहीं हो सकता। उसके साथ लड़ाई करूँगा किस प्रकार ?"

इधर लड़की के सम्बन्ध की बातें आने लगीं अनेक ओर से। ग्रह-नक्षत्रों की असम्मति नहीं, ऐसे प्रस्ताव भी थे उनमें। लड़की जिद करके कह बैठी—"वह सदैव कुमारी रहेगी, विद्या की साधना में हो बीतेंगे उसके दिन।"

बाप तात्पर्य नहीं समझ सके, उन्हें याद आई लीलावती की बात। माँ समझ गईं, चुपचाप जल बरसने लगा उनकी आँखों से। अन्त में एक दिन माँ मेरे हाथ में एक कागज देती हुई बोलीं—"सुनेत्रा की जन्मपत्री है। इसे दिखाकर अपनी जन्मपत्री में संशोधन कराके ले आओ। अपनी लड़की का अकारण दुःख सह नहीं सकूँगी।"

बाद में क्या हुआ, कहा नहीं जायगा। जन्मपत्री के अङ्कजाल से सुनेत्रा का उद्धार कर लाया। आँखों का पानी पोंछते-पोंछते माँ बोली—"पुण्यकर्म किया है, बेटा !"

उसके बाद से कोई इक्कीस वर्ष कट गये हैं।

४

हवा का वेग बढ़ता ही गया, वर्षा का विराम नहीं। सुनेत्रा से बोला—"प्रकाश नेत्रों को लगता है, बुझा दो।" बुझा दिया।

वृष्टिधाराओं के बीच सड़क के लैम्पों की धुँधली आभा अँधेरे घर में आई। सोफा के ऊपर सुनेत्रा को बैठाया अपने पास। बोला—"सुनो, मुझे तुम अपना यथार्थ साथी मानती हो न तुम ?"

"यह अब कैसा प्रश्न हुआ तुम्हारा। उत्तर देना ही पड़ेगा क्या ?"

"तुम्हारे ग्रह-नक्षत्र यदि न मानें ?"

"निश्चय मानेंगे, मैं जानती नहीं क्या ?"

"इतने दिन तो इकट्ठे कटे हमारे, कोई संशय क्या किसी दिन उठा तुम्हारे मन में ?"

"ऐसी बेकार की बातें यदि पूछोगे तो गुस्सा हो जाऊँगी।"

"सुनो, हम दोनों ने मिलकर दुःख पाए हैं बहुत बार। मेरा पहला लड़का मर गया आठवें महीने में ही। टाइफाइड से जब मैं मरणासन्न था, पिता की मृत्यु हो गई। अन्त में देखा वसीयतनामे में जालसाजी करके बड़े भाई ने ले ली समस्त सम्पत्ति। आज नौकरी ही मेरा एकमात्र भरोसा है। तुम्हारी माता का स्नेह था मेरे जीवन का ध्रुवतारा। पूजा की छुट्टी में घर जाते समय मार्ग में ही नाव डूब जाने से पति के साथ ही मारी गईं मेघनानदी के गर्त्त में। देखा, विषय-बुद्धिहीन अध्यापक ऋण रख गए हैं बड़े अङ्कों का; उस ऋण को स्वीकार कर लिया। कैसे समझूँ कि यह समस्त विपत्तियाँ नहीं घटाईं मेरे ही दुष्ट-ग्रहों ने ? पहले से अगर जानतीं मुझे तो व्याह नहीं करतीं।"

सुनेत्रा कोई उत्तर न देकर मुझ से चिपट गई।

मैं बोला—"सभी दुःख-दुर्लक्षणों की अपेक्षा प्यार ही बड़ा है, हमारे जीवन से क्या उसका प्रमाण नहीं मिला ?"

"निश्चय, निश्चय मिला है।"

"मान लो, यदि ग्रहों के अनुग्रह से तुम्हारे सामने ही मेरी मृत्यु हो जाय तो उस क्षति की जीवित रहते हुए ही क्या मैंने पूर्त्ति नहीं कर दी ?"

"बस, बस, अब कुछ मत बोलो।"

"सावित्री के लिए सत्यवान के साथ का एक दिन का मिलन भी जिस चिर-विच्छेद की अपेक्षा बड़ा था, उन्होंने तो भय नहीं किया मृत्यु-ग्रहों का।"

चुप होकर रह गई सुनेत्रा । मैं बोला—"तुम्हारी अरुणा प्यार करती है शैलेन को, इतना जान लेना ही यथेष्ट है; बाकी सब रहने दो अज्ञात; क्या कहती हो, सुनू ।"

सुनेत्रा ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"तुम्हें जब पहलेपहल प्यार किया था, बाधा पाई थी । मैं परिवार में दूसरी बार उस निष्ठुर दुःख को नहीं आने दूँगा, किसी भी ग्रह की मन्त्रणा से । उन दोनों की जन्मपत्री के अङ्क मिलाकर संशय को किसी प्रकार नहीं आने दूँगा ।"

ठीक उसी समय सीढ़ियों पर पाँवों का शब्द सुना गया । शैलेन उतर कर जा रहा था । सुनेत्रा झटपट उठ कर गई, बोली—"कौन, बेटा शैलेन ! अभी से तुम जारहे हो क्या ?"

शैलेन डरता-डरता बोला—"कुछ देर हो गई, घड़ी नहीं थी, जान नहीं पाया ।"

सुनेत्रा बोली—"नहीं, कुछ देर नहीं हुई । आज रात को तुम्हें यहीं खाकर जाना होगा ।

इसी को तो कहते हैं प्रश्रय ।

उसी रात को अपनी जन्मपत्री के संशोधन का समस्त विवरण सुनेत्रा को सुनाया । वह बोल उठी—'न कहते तो अच्छा करते ।"

"क्यों ?"

"इस समय से बराबर डर बना रहेगा ।"

"किस का भय ? वैधव्य-योग का ?"

बहुत देर तक चुप बनी रही 'सुनी' । उसके बाद बोली—"नहीं, भय नहीं करूँगी । मैं यदि तुम्हें छोड़कर पहले चली जाऊँ, तो मेरी मृत्यु होगी द्विगुण-मृत्यु ।"

एक छोटी-सी पुरानी कहानी

कहानी कहनी पड़ेगी ? परन्तु अब तो सम्भव नहीं है । अब इस हारे-थके अशक्त व्यक्ति को छुट्टी देनी पड़ेगी ।

यह पद मुझे किसने दिया, कहना कठिन है । क्रम-क्रम से एक-एक कर तुम पाँच लोग आकर मेरे चारों ओर किस समय जमा हो गये; एवं किसलिए तुमने मुझ पर इतना अनुग्रह किया एवं मुझ से ऐसी प्रत्याशा की, यह कहना मेरे लिए कठिन है । अवश्य ही वह तुम्हारे अपने गुण से, सौभाग्य से मेरे प्रति अचानक ही तुम्हारा अनुग्रह उदय हुआ । एवं जिस प्रकार उस अनुग्रह की रक्षा हो, उसकी यथासाध्य चेष्टा में त्रुटि नहीं हुई है ।

परन्तु पाँच लोगों की अव्यक्त, अनिर्दिष्ट सम्मति के अनुसार जो कार्यभार मुझे समर्पित कर दिया गया है, मैं उसके योग्य नहीं हूँ । शक्ति है अथवा नहीं—इसे लेकर विनय अथवा अहंकार नहीं करना चाहता, प्रधान कारण यही है कि विधाता ने मुझे एकान्त में रहने

वाले प्राणी के रूप में ही बनाया है। ख्याति, यश एवं जनता के लिए उपयोगी बनाने हेतु, मेरे शरीर में कठिन चर्म का आवरण नहीं दिया है; उसका यही विधान है कि 'यदि तुम आत्मरक्षा करना चाहो तो एक निर्जन स्थान में वास करना।' हृदय भी उसी एकान्त निवास-स्थान के लिए सदैव उत्कण्ठित रहता है। परन्तु पितामह-भाग्य, मजाक के लिए ही हो अथवा गलती से हो, मुझे एक विपुल जनसमाज के बीच उत्तीर्ण कर, इस समय मुँह पर कपड़ा लगाये हँस रहे हैं, मैं उनकी उस हँसी में सहयोग देने की चेष्टा करता हूँ, परन्तु तनिक भी कृतकार्य नहीं हो पाता।

भाग खड़ा होना भी अपना कर्तव्य नहीं समझता। सेना में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो स्वभावत: युद्ध की अपेक्षा शान्ति में अधिक स्फूर्ति पा सकते हैं, परन्तु जिस समय वे अपने एवं पराये भ्रम से युद्ध-क्षेत्र के बीच आकर खड़े होते हैं, उस समय अचानक ही दल छोड़कर भागना उन्हें शोभाजनक नहीं होता। भाग्य खूब सोच-विचार कर प्राणियों को यथासाध्य कर्मों में नहीं लगता, परन्तु तो भी जिस कार्य में नियुक्ति हो जाय उसे दृढ़ निष्ठापूर्वक सम्पन्न करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

तुम लोग आवश्यकता समझने पर मेरे पास आकर बैठते हो एवं सम्मान प्रदर्शित करने में भी त्रुटि नहीं करते। आवश्यकता समाप्त हो जाने पर सेवकाधम के प्रति अवज्ञा प्रकट करने में भी कुछ आत्म-गौरव अनुभव करने की चेष्टा करते हो। पृथ्वी पर साधारणत: यही स्वाभाविक है एवं इसी कारणवश 'साधारण' नामक एक अकृतज्ञ, अव्यवस्थितचित्त राजा पर उसका अनुचरवर्ग पूर्णरूपेण विश्वास नहीं करता। परन्तु, अनुग्रह-निग्रह की ओर देखते हुए ही सब समय काम नहीं किया जा सकता। निरपेक्ष होकर काम न करने से काम का गौरव भी नहीं रहता।

अतएव यदि कुछ सुनने की इच्छा करके आये हो तो कुछ सुनाऊँगा। थकान नहीं मानूँगा एवं उत्साह की भी प्रत्याशा नहीं करूँगा।

आज, परन्तु बहुत छोटी एवं पृथ्वी की अत्यन्त पुरानी एक कहानी याद आ रही है। मनोहर न होने पर भी संक्षिप्त होने के कारण सुनते समय धैर्य्य-हीन न होने की आशा है—

"पृथ्वी की एक महानदी के तट पर एक महारण्य (बड़ावन) था। उस वन में एवं उसी नदी के तट पर एक 'कठफोड़वा' एवं एक 'चाहा' पक्षी रहते थे।

पृथ्वीतल पर कीड़े जिस समय प्राप्य थे, उस समय क्षुधानिवृत्ति-पूर्वक सन्तुष्टचित्त से दोनों ही धराधाम का यशोकीर्तन करते हुए पुष्ट-शरीर से विचरण करते थे।"

कालक्रम से, दैवयोग से पृथ्वी पर कीड़े दुष्प्राप्य हो उठे।

उस समय नदी के तट पर रहने वाले 'चाहा' ने डाली पर बैठे हुए कठफोड़वा से कहा—"भाई कठफोड़वा! बाहर से बहुतों को यह पृथ्वी अपने मन में नवीन श्यामल (हरी-भरी) और सुन्दर जान पड़ती है, परन्तु मैं देखता हूँ कि यह आद्योपान्त जीर्ण (पुरानी) है।"

डाली पर बैठे हुए कठफोड़वा ने नदी-तट पर स्थित चाहा से कहा—"भाई चाहा! बहुत से लोग इस वन को सतेज और शोभन कह कर विश्वास करते हैं, परन्तु मैं कहता हूँ कि यह पूर्णतः अन्तःसार विहीन है।"

उस समय दोनों मिलकर इसे प्रमाणित करने के लिए कृत-संकल्प हुए। चाहा नदी के तट पर उछल-उछल कर, पृथ्वी की कोमल कीचड़ में अनवरत (लगातार) चोंच घुसा कर, पृथ्वी की जीर्णता का निर्देश करने लगा एवं कठफोड़वा वृक्ष की कठोर शाखा में बारम्बार

चोंच मार कर वन की अन्तःशून्यता (खोखलापन) का प्रचार करने में प्रवृत्त हो गया।

विधि की विडम्बना से उक्त दोनों ही अध्यवसायी पक्षी संगीत विद्या से वंचित थे। अतएव कोयल जिस समय धरातल पर नव-बसन्त के समागम की पंचम स्वर में घोषणा करने लगी एवं श्यामा जिस समय वन में नवीन प्रभातोदय का कीर्त्तन करने में नियुक्त रही, उस समय यह दोनों क्षुधित असन्तुष्ट मूक पक्षी अश्रान्त उत्साह से अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने में लगे रहे।"

यह कहानी तुम लोगों को अच्छी नहीं लगी ? अच्छी लगने की बात नहीं है। परन्तु, इसमें सबसे बढ़कर विशेष गुण यह है कि पाँच सात पैराग्राफ में ही समाप्त हो गई।

यह कहानी पुरानी है, यह भी तुम्हारे मन में नहीं होता ? इसका कारण, पृथ्वी के भाग्य-दोष से यह कहानी अत्यन्त पुरानी होते हुए भी चिर-काल के लिए नवीन बनी रही। बहुत दिनों से अकृतज्ञ कठफोड़वा पृथ्वी के दृढ़, कठिन, अमर महत्व के ऊपर 'ठक-ठक' शब्द से चञ्चु-पात (चोंच-मारना) कर रहा है एवं चाहा पृथ्वी के सरस उर्वर कोमलत्व के बीच 'खच्-खच्' शब्द से चञ्चु-बिद्ध (चोंच घुसाना) कर रहा है—आज भी उसकी समाप्ति नहीं हुई, मन का आक्षेप इस समय भी रह गया है।

'कहानी में सुख-दुःख की क्या बात है'—यह पूछ रहे हो ? इसमें दुःख की बात भी है, सुख की बात भी है। दुःख की बात यह है कि पृथ्वी कितनी ही उदार एवं वन कितना ही बड़ा हो, क्षुद्रचञ्चु (छोटी चोंच वाले) अपने लिए उपयुक्त खाद्य न पाने मात्र से ही उसकी ओर आघात पहुँचाते आये हैं एवं सुख का विषय यह है कि तो भी सैकड़ों-सहस्रों वर्षों से पृथ्वी नवीन एवं वन श्यामल बने हुए

हैं। यदि कोई मर रहे हैं तो वह वही दो विद्वेषजर्जर हतभाग्य पक्षी एवं संसार में कोई भी उस समाचार को जान भी नहीं पाता।

तुम लोग इस कहानी में खाक-धूल अर्थ क्या है, कुछ नहीं समझ सके? तात्पर्य कुछ अधिक जटिल नहीं है, यदि है तो कुछ आयु बढ़ने पर समझ सकोगे।

जो भी हो, यह सारी बात तुम लोगों के लिए उपयुक्त नहीं हुई?

इसमें तो कोई सन्देह भी नहीं।

त्याग

प्रथम परिच्छेद

फाल्गुन मास की पहली पूर्णिमा को आम के बौरों की गन्ध लिए नव-वसंत की वायु बह रही है। तालाब के किनारे एक पुराने लीची के वृक्ष के घने पत्तों में से एक निद्रा-हीन, अश्रान्त पपीहे का गीत मुखर्जियों के शयनगृह में प्रविष्ट हो रहा है। हेमन्त कुछ चञ्चलभाव से कभी अपनी स्त्री के बँधे हुए जूड़े में से बाल खोलकर अपनी अँगुलियों में लपेट लेता है, कभी उसके कड़े और चूड़ियों में संघात करके ठूँ-ठूँ शब्द करता है, कभी उसके मस्तक की फूलमाला को खींच, अपने स्थान से हटाकर उसके मुँह पर ला लटकाता है। सन्ध्या-काल में निस्तब्ध फूलों के पौधों को सचेतन कर, उन्हें हिलाने-डुलाने के लिए वायु जैसे एक बार इधर से, एक बार उधर से' एकाध-बार हिला-डुला देती है, हेमन्त का भी कुछ ऐसा ही भाव है।

परन्तु, कुसुम सामने के चन्द्रलोक प्लावित

असीम आकाश के बीच दोनों आँखें गढ़ाए स्थिर होकर बैठी है। पति की चञ्चलता उसे स्पर्श कर, पराजित हो पीछे लौट जाती है। अन्त में हेमन्त कुछ अधीर भाव से कुसुम के दोनों हाथ झकझोरता हुआ बोला—"कुसुम ! तुम हो कहाँ ? तुम्हें जैसे एक बड़ी दूरबीन लगाकर बड़ी दूरी पर विन्दुमात्र ही देखा जाएगा, ऐसी दूर जा पड़ी हो। मेरी इच्छा है, तुम आज कुछ पास आ जाओ। देखो देख रहा हूँ, कैसी चमत्कारपूर्ण रात्रि है।"

कुसुम आकाश से मुँह हटाकर पति के मुख की ओर रख कर बोली—"यह चाँदनी रात, यह वसन्त काल, सभी इसी समय मिथ्या बनकर नष्ट हो सकते हैं, ऐसा एक मन्त्र मैं जानती हूँ।"

हेमन्त बोला—"यदि जानती हो तो उसको उच्चारण करने का काम नहीं है। अपितु ऐसा यदि कोई मन्त्र जानती हो जिससे सप्ताह के बीच तीन-चार रविवार आवें किम्बा रात्रि शाम को पाँच-साढ़े पाँच बजे तक टिकी रहे तो उसे सुनने को राजी हूँ।" कहकर कुसुम को दुबारा खींच लेने की चेष्टा की। कुसुम उस आलिङ्गनपाश में पकड़ाई न आती हुई बोली—"अपने मृत्यु-काल में तुमसे जो बात कहने की मन में सोची थी, आज उसी को कहने की इच्छा हो रही है। आज मन को लगता है, तुम मुझे कितना ही दण्ड क्यों न दो; मैं वह न कर सकूँगी।"

दण्ड के सम्बन्ध में जयदेव का एक श्लोक सुनाकर हेमन्त कुछ रसिकता करने का उद्योग कर रहा था। इसी समय सुना गया एक क्रुद्ध चट्टियों का चटाचट् शब्द पास आ रहा है। हेमन्त के पिता हरिहर मुखर्जी की परिचित पग-ध्वनि थी। हेमन्त घबड़ा उठा।

हरिहर ने दरवाजे के पास आकर क्रुद्ध-गर्जना से कहा—"हेमन्त, बहू को इसी समय घर से दूर कर दो।"

हेमन्त ने स्त्री के मुँह की ओर देखा, स्त्री ने कुछ भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया। केवल दोनों हाथों के बीच कातर मुख को छिपाकर अपने

सम्पूर्ण बल एवं इच्छा से स्वयं को जैसे लुप्त कर देने की चेष्टा की। दक्षिणी वायु से पपीहे का स्वर घर में प्रविष्ट होने लगा, सो किसी के भी कान में नहीं पहुँचा। पृथ्वी ऐसी असीम सुन्दर है, फिर भी इतनी सहज ही पूर्ण रूपेण विकल हो जाती है।

द्वितीय परिच्छेद

हेमन्त ने बाहर से लौट कर स्त्री से पूछा—"सत्य है क्या ?"

स्त्री ने कहा —"सत्य है।"

"इतने दिनों तक क्यों नहीं कहा ?"

"अनेक बार कहने की चेष्टा की, कह न सकी। मैं बड़ी पापिनी हूँ।"

"तो अब सब बातें खोलकर कहो।"

कुसुम गंभीर दृढ़ स्वर में सब कुछ कह गई—जैसे निश्चल चरणों से, धीर गति से अग्नि के बीच होती हुई निकल गई, कितनी जली इसे कोई नहीं समझ सका। सब बातें सुनकर हेमन्त उठ गया।

कुसुम ने समझा, जो स्वामी चले गए हैं, उन स्वामी को लौटा हुआ नहीं पाएगी। मन में कोई अचरज नहीं हुआ; यह घटना भी जैसे अन्यान्य दैनिक घटनाओं की भाँति अत्यन्त सहर्ष-भाव से उपस्थित हुई, मन में एक शुष्क अचैतन्यता का संचार हुआ। केवल, पृथ्वी का एवं प्यार का आदि-अन्त मिथ्या एवं शून्य जान पड़ने लगा। यही क्यों, हेमन्त की भूतकालीन प्यार की सभी बातें स्मरण करके अत्यन्त नीरस, कठिन एवं निरानन्द हँसी; एक प्रखर-धार वाली निष्ठुर छुरी के समान उसके मन के एक कोने से दूसरे कोने तक एक दाग बना कर चली गई। शायद उसने सोचा—'जिस प्यार को वह इतना समझती थी, इतना आदर, इतनी प्रगाढ़ता—जिसका तिल मात्र विच्छेद ऐसा मर्मान्तिक, जिसका क्षणकालीन-मिलन ऐसा निबिड़ानन्दमय, जिसे मन में असीम,

अनन्त समझा जाता है, जन्म-जन्मान्तर तक भी जिसकी समाप्ति की कल्पना नहीं की जा सकती—वह प्यार क्या यही है ? इतने ही के ऊपर खड़ा था ! समाज ने जैसे ही जरा सा आघात किया, वैसे ही असीम प्यार चूर्ण होकर एक मुट्ठी धूलि बन गया । हेमन्त कम्पित स्वर में अब से कुछ पहले कानों के पास कह रहा था—'चमत्कार-पूर्ण रात्रि है ।' वह रात्रि तो अभी भी समाप्त नहीं हुई; अभी भी वही पपीहा पुकार रहा है; दक्षिणी वायु मशहरी को कँपाती जा रही है, एवं चाँदनी सुख-श्रान्त, सुप्त-सुन्दरी की भाँति वातायनवर्त्ती (खिड़की के पास पड़े हुए) पलँग के एक कोने में सिकुड़ कर पड़ी हुई है । सब कुछ मिथ्या है । 'प्यार मेरी अपेक्षा अधिक मिथ्यावादी, मिथ्याचारी है ।'

तृतीय परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे ही अनिद्रा-शुष्क* हेमन्त पागल जैसा बनकर प्यारीशङ्कर घोषाल के मकान पर जा उपस्थित हुआ । प्यारी-शङ्कर ने पूछा—"क्या है बाबू ! क्या खबर है ?"

हेमन्त एक प्रबल अग्नि के समान जैसे खड़ा होकर जलता-जलता, काँपता-काँपता बोला—"तुमने हम लोगों की जाति नष्ट की है, सर्वनाश किया है—तुम्हें इसके लिए दण्ड भोगना होगा"—कहते-कहते उसका कण्ठ रुद्ध हो आया ।

प्यारीशङ्कर ने कुछ हँसकर कहा—"और तुम लोगों ने मेरी जाति की रक्षा की है, मेरे समाज की रक्षा की है, मेरी पीठ पर हाथ फेर दिया है ? मेरे प्रति तुम लोगों का बड़ा यत्न (मेहरबानी) है, बड़ा प्यार है ।"

हेमन्त की इच्छा हुई, उसी क्षण प्यारीशङ्कर को ब्रह्म-तेज

*जो रात भर जगने के कारण सूखा सा हो ।

से भस्म कर देता, परन्तु उस तेज से वह स्वयं ही जलने लगा, प्यारीशङ्कर दिव्य, स्वस्थ, निरामय से बैठा रहा।

हेमन्त टूटे हुए गले से बोला—"मैंने तुम्हारा क्या किया था।"

प्यारीशङ्कर ने कहा—"मैं पूछता हूँ, मेरे एक कन्या छोड़कर और सन्तान नहीं है, मेरी उस कन्या ने तुम्हारे पिता का क्या अपराध किया था। तुम उस समय छोटे थे, तुम उसे नहीं जानते—अतः उस घटना को मन लगा कर सुनो। घबराओ मत बाबू, इसके बीच अनेक कौतुक (गुल) हैं।

"मेरे जमाता (दामाद) नवाकान्त मेरी कन्या के गहनों को चुराकर जिस समय विलायत भाग गए, उस समय तुम शिशु (छोटा-बच्चा) थे। उसके उपरान्त पाँच वर्ष बाद जब वे बैरिस्टर होकर देश में लौट कर आए, उस समय मुहल्ले में जो एक बवण्डर मचा, वह शायद कुछ-कुछ तुमको याद होगा। अथवा तुम नहीं भी जानते होगे, तुम उस समय कलकत्ते के स्कूल में पढ़ते थे। तुम्हारे पिता ने गाँव का मुखिया बन कर कहा—"लड़की को यदि पति के घर भेजने का इरादा हो तो उस लड़की को फिर घर नहीं ले जा सकोगे।" मैंने उनके हाथ-पाँव जोड़ कर कहा—"दादा इस बार तुम मुझे क्षमा करो। मैं लड़के को गोबर खिलाकर प्रायश्चित कराता हूँ, तुम लोग उसे जाति में मिला लो।" तुम्हारे पिता किसी तरह भी राजी नहीं हुए, मैं भी अपनी एक मात्र लड़की को त्याग न सका। जाति छोड़कर, देश छोड़कर कलकत्ता में रहने लगा। यहाँ आकर भी विपत्ति नहीं मिटी। अपने भतीजे के विवाह की जब तैयारी कर चुका था, तुम्हारे बाप ने कन्या-पक्ष के लोगों को उत्तेजित (भड़का) कर, उस विवाह को भङ्ग करा दिया। मैंने प्रतिज्ञा की, यदि इसका प्रतिशोध न लूँ, तो ब्राह्मण का लड़का नहीं। —इस बार कुछ-कुछ समझ गए होगे—परन्तु अभी थोड़ा सब्र और करो—समस्त घटना को सुनकर खुश होगे—इसमें एक रस है।

"तुम जब कालेज में पढ़ते थे, तुम्हारे घर के पास ही विप्रदास चटर्जी का मकान था। बेचारे अब मर चुके हैं। चटर्जी महाशय के मकान में कुसुम नामक एक बाल-विधवा अनाथ कायस्थ-कन्या आश्रित रूप से रहती थी। कन्या बड़ी सुन्दरी थी—बूढ़ा ब्राह्मण कालेज के लड़कों के दृष्टिपथ (निगाह) से उसे बचाने के लिए कुछ दुश्चिन्ताग्रस्त हो गया था। परन्तु बूढ़े मनुष्य को धोखा देना एक लड़की के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। लड़की प्रायः ही कपड़े सुखाने के लिए छत पर जा पहुँची और तुम्हें भी शायद छत पर जाए बिना पाठ याद नहीं होता था। आपस में छत के ऊपर तुम लोगों में किसी प्रकार की बातचीत होती थी या नहीं; उसे तुम्हीं जानो, परन्तु लड़की के भावों को देखकर बूढ़े के मन में भी सन्देह होगया। कारण, काम-काज में रह-रह कर उससे भूल होती देखी जाने लगी एवं तपस्विनी पार्वती की भांति वह दिन-प्रति-दिन आहार निद्रा का त्याग करने लगी। किसी-किसी दिन वह बूढे के सम्मुख अकारण ही उमड़ते हुए आँसुओं को भी नहीं रोक पाती।"

"अन्त में बूढ़े ने खोज की, छत पर तुम लोगों के बीच समय-असमय मौन-साक्षात्कार चलता है—यही क्यों, कालिज की अनुपस्थिति करके भी तुम मध्याह्न काल में खपरैल के घर की छाया में, छत के कोने में तुम पुस्तक हाथ में लिए बैठे रहते थे; एकान्त-अध्ययन में अचानक ही तुम्हारा इतना उत्साह पैदा हुआ था। विप्रदास जिस समय मेरे पास परामर्श लेने आए; मैंने कहा—"बूढ़े! तुम तो बहुत दिनों से काशी जाने की इच्छा कर रहे हो—लड़की को मेरे पास छोड़कर तीर्थ-वास करने चले जाओ, मैं उसका भार लेता हूँ।"

"विप्रदास तीर्थ को चला गया। मैंने लड़की को श्रीपति चटर्जी के घर में रखकर, कसी को लड़की का पिता प्रसिद्ध कर दिया। उसके बाद जो हुआ तुम जानते हो। तुम्हारे समीप आदि से अन्त तक सब बातें खुलासा करके बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। यह जैसे एक कहानी के

समान है। इच्छा है, सब बातें लिखकर एक पुस्तक के रूप में छप-वाऊँ। मुझे लिखना नहीं आता। मेरा भतीजा सुनते हैं कुछ-कुछ लिखता है—उसी से लिखवाने का विचार है। परन्तु, तुम्हारा और उसका मिलकर लिखना अधिक अच्छा होगा, कारण, कहानी के उपसंहार को मैं अच्छी तरह नहीं जानता।"

हेमन्त प्यारीशङ्कर की इस अन्तिम बात पर कुछ अधिक ध्यान देकर बोला—"कुसुम ने इस विवाह के लिए कोई आपत्ति नहीं की ?"

प्यारीशङ्कर ने कहा—" आपत्ति की या नहीं, यह समझना बहुत कठिन है। जानते तो हो बेटा ! स्त्रियों का मन—जिस समय 'ना' कहें, उस समय 'हाँ' समझना पड़ता है। पहले तो कुछ दिनों तक नए मकान में आकर तुम्हें न देख पाने से पागलों के समान होगी। तुम्हें भी देखा, कहीं से पता पा लिया; प्रायः ही पुस्तक हाथ में लिए कालेज जाते हुए तुम्हें मार्ग भूल जाता—एवं श्रीपति के घर के सामने आकर जैसे कुछ ढूँढ़ने लगते; ठीक जैसे प्रेसिडेन्सी कालिज का रास्ता ढूँढ़ रहे हो, ऐसा नहीं लगता था, कारण, भले लोगों के मकान की खिड़कियों में होकर केवल पतङ्ग (कीड़े) एवं उन्मत्त युवकों के हृदय का मार्ग ही होता है। देख-सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। देखा, तुम्हारे पढ़ने में बड़ा व्याघात होता है एवं लड़की की अवस्था भी सङ्कटापन्न है।"

"एक दिन कुसुम को बुलाकर कहा—'बेटी ! मैं वृद्ध-मनुष्य हूँ, मेरे समीप लज्जा करने की आवश्यकता नहीं है— तुम जिसे मन-ही-मन भजती हो, मैं जानता हूँ। लड़का भी मिट्टी होने जैसा होगया है। मेरी इच्छा है, तुम लोगों का मिलन हो।' सुनते ही कुसुम एकदम छाती फाड़कर रोने लगी एवं दौड़कर भाग गई। इस प्रकार से प्रायः बीच-बीच में सन्ध्या के समय श्रीपति के मकान पर जा, कुसुम को बुलाकर, तुम्हारी बात उठाकर, क्रमशः उसकी लज्जा दूर कर दी। अन्त में प्रतिदिन क्रमशः आलोचना करते हुए उसे समझाया कि विवाह

के अतिरिक्त कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। उसे छोड़कर मिलन का और कोई उपाय नहीं है। कुसुम ने कहा—'वह कैसे होगा ?' मैंने कहा—'तुम्हें कुलीन की लड़की कह कर चला दूँगा।' अनेक तर्कों के बाद उसने इस सम्बन्ध में तुम्हारी राय जानने के लिए कहा। मैंने कहा—"लड़का जैसे एक ही बार खप (मर) जाने जैसा हो रहा है, उससे फिर यह सब गोलमाल की बातें कहने की क्या आवश्यकता है ? कार्य खूब बिना आपत्ति के, निश्चिन्तापूर्वक सम्पन्न हो जाते ही सब ओर सुख हो जाएगा। विशेषकर, इस बात की जब कभी प्रकट हो जाने की कोई सम्भावना नहीं है, तब बेचारे को किस लिए गले पड़ कर सदैव के लिए दुःखी किया जाए' ?"

"कुसुम समझी, क्या नहीं समझी, मैं नहीं समझ पाया। कभी रोती, कभी चुप रह जाती। अन्त में जब मैंने कहा—'तो रहने दो' उस समय फिर वह अस्थिर हो उठी। ऐसी अवस्था में श्रीपति के द्वारा तुम्हें विवाह का प्रस्ताव भिजवाया। देखा सम्मति (स्वीकृति) देते हुए तुम्हें तिल भर विलम्ब नहीं हुआ। तब ब्याह की सब बातें ठीक हो गईं।"

"विवाह के थोड़े ही पहले कुसुम इस प्रकार बिदक- खड़ी हुई कि उसे फिर किसी प्रकार सम्हाला नहीं जा सका। वह मेरे हाथ-पाँव पकड़ कर बोली—"यही काम नहीं होगा; ताऊजी।" मैं बोला—"यह क्या सर्वनाश। सब कुछ निश्चित हो गया है, अब क्या कह कर लौटाऊँ ?" कुसुम बोली—"तुम प्रकट (जाहिर) कर दो, मेरी अचानक मृत्यु हो गई है—मुझे यहाँ से कहीं भी भेज दो"। मैं बोला—"वैसा होने पर लड़के की दशा क्या होगी ? उसके बहुत दिनों की आशा कल पूर्ण होगी, यह जानकर वह स्वर्ग में जा बैठा है, आज मैं अचानक उसे मृत्यु का समाचार भेजूँ"। फिर उसके दूसरे दिन तुम्हें उसकी मृत्यु का समाचार भेजना होगा, एवं उसी दिन सन्ध्या के समय मेरे पास

तुम्हारी मृत्यु का समाचार आएगा। मैं क्या इस वृद्धावस्था में स्त्री-हत्या, ब्रह्म-हत्या करने बैठा हूँ ?"

"उसके बाद शुभ-लग्न में शुभ-विवाह सम्पन्न हुआ—मैं अपने एक कर्त्तव्य-ऋण से मुक्ति पाकर बच गया। उसके बाद क्या हुआ सो तुम जानते हो।"

हेमन्त ने कहा—"हम लोगों का जो करना था, वह तो कर ही चुके, फिर इस बात को प्रकट क्यों किया ?"

प्यारीशङ्कर ने कहा—"देखा, तुम्हारी छोटी बहिन के विवाह की सब बातें तय हो चुकी हैं उस समय मन-ही-मन सोचा—एक ब्राह्मण की जाति नष्ट की, परन्तु वह केवल कर्त्तव्य के कारण। फिर एक और ब्राह्मण की जाति नष्ट हो रही है, मेरा कर्त्तव्य इसका निवारण करना है। इसीलिए उन लोगों को चिट्ठी लिख दी। कहा—'हेमन्त ने जो शूद्र की कन्या से विवाह किया है, उसका प्रमाण है'।"

हेमन्त ने बड़े कष्ट से धैर्य-सम्वरण करके कहा—"इस लड़की का मैं परित्याग कर दूँ तो इसकी दशा क्या होगी ? आप इसे आश्रय देंगे ?"

प्यारीशङ्कर ने कहा—"मेरा जो काम था, उसे मैंने किया, अब दूसरे की परित्यक्त-स्त्री का पोषण करना मेरा कर्म नहीं है।—ओरे ! हेमन्त बाबू के लिए बरफ डालकर एक गिलास डाब (हरा नारियल) का पानी ले आओ, और पान लाओ।"

हेमन्त इस सु-शीतल आतिथ्य की प्रतीक्षा न करके चला गया।

चतुर्थ परिच्छेद

कृष्णपक्ष की पञ्चमी। अँधेरी रात। पक्षी नहीं बोल रहे। तालाब के किनारे लीची के पेड़ काले चित्रपट के ऊपर गहरे दाग के

समान लेप दिए गए हैं। केवल दक्षिणी वायु इस अन्धकार में अन्धे के समान घूम-घूम कर फिर रही, जैसे उसे अन्धेरे ने पा (पकड़) लिया हो। और आकाश के तारे निर्निमेश सतर्क नेत्रों से प्राण-प्रण से अन्धकार को भेदकर किसी-एक रहस्य का आविष्कार करने में प्रवृत्त हैं।

शयन-गृह में दीपक नहीं जलाया गया। हेमन्त खिड़की के पास खाट के ऊपर बैठा हुआ सामने के अन्धकार की ओर देख रहा है। कुसुम पृथ्वी के ऊपर दोनों हाथों से उसके पाँव पकड़े हुए पांवों के ऊपर मुँह रक्खे पड़ी हुई है। समय जैसे स्तम्भित-समुद्र के समान स्थिर हो गया है। जैसे अन्त रात्रि के ऊपर अदृष्ट चित्रकार ने इस एक चिर-स्थायी छवि को अंक रक्खा है—चारों ओर प्रलय, बीच में एक विचारक एवं उसके पाँवों के पास एक अपराधिनी।

फिर चट्टियों का शब्द हुआ। हरिहर मुखर्जी द्वार के समीप आकर बोले—"बहुत देर हो गई, और समय नहीं दे सकूँगा। लड़की को घर से दूर कर दो।"

कुसुम ने इस स्वर को सुनते ही एकबार क्षणभर के लिए चिर-जीवन की साध मिटाते हुए हेमन्त के दोनों पाँव दुगने आवेग से कस कर पकड़ लिए, चरण-चुम्बन कर, पाँवों की धूल मस्तक से लगा, पाँव छोड़ दिए।

हेमन्त उठकर पिता के पास जाकर बोला—"मैं स्त्री का त्याग नहीं करूँगा।"

हरिहर ने गरजते हुए कहा—"जाति खोएगा।"

हेमन्त ने कहा—"मैं जाति को नहीं मानता।"

"तो तू भी दूर होजा।"

ठाकुर' दा

पहिला परिच्छेद

नयनजोड़ के जमींदार लोग एक समय बाबू कह कर विशेष विख्यात थे। उस समय की बाबूगीरी का आदर्श बहुत सरल नहीं था। इस समय जैसे राजा-रायबहादुर का खिताब अर्जित करने में अनेक प्रकार के नाच, घुड़दौड़ एवं सलाम-सिफारिशों का श्राद्ध करना पड़ता है, उस समय भी जनसाधारण द्वारा 'बाबू' की उपाधि प्राप्त करने में विस्तृत, दुस्साध्य तपश्चरण करना पड़ता था।

हमारे नयनजोड़ के बाबू लोग किनारी फाड़कर ढाका के कपड़े पहिनते थे, कारण पाड़ की कर्कशता से उन लोगों की सुकोमल बाबूगीरी व्यथित होती थी। वे लाख रुपया देकर बिल्ली के बच्चों का विवाह करते थे एवं कहावत है, एक बार किसी उत्सव के उपलक्ष्य में रात्रि को दिन करने की प्रतिज्ञा करके असंख्य दीपक जलाकर सूर्य-किरणों के अनुकरण पर

उन्होंने सच्चे रूपा की जरी (गोटा) की ऊपर से वर्षा कराई थी।

इसी से सब लोग समझ सकते हैं, उस समय के बाबू लोगों की बाबूगीरी वंश परम्परागत स्थायी रूप से नहीं चल सकती थी। बहुत-सी वत्तियों वाले दीपक की भाँति अपने तेल को स्वयं ही थोड़े समय की धूम-धाम में समाप्त कर देते थे।

हमारे कैलाशचन्द्र राय चौधरी उसी प्रख्यातयश नयनजोड़ के एक बुझे हुए बाबू हैं। इन्होंने जब जन्म-ग्रहण किया था, तैल उस समय दीपक के तल-प्रदेश में आकर ठहरा हुआ था; इनके पिता की मृत्यु होने के बाद नयनजोड़ की बाबूगीरी, कई एक असाधारण श्राद्ध-शान्ति में अन्तिम दीप्ति प्रकाशित कर अचानक बुझ गई। सारी जमींदारी-आभूषण ऋण चुकाने में बिक गए; जो थोड़ा बचा रहा उससे पूर्वजों की ख्याति की रक्षा करना असम्भव था।

इसीलिए नयनजोड़ को त्याग कर, पुत्र को साथ ले कैलाशबाबू कलकत्ते आकर रहने लगे—पुत्र भी एक कन्या-मात्र छोड़कर इस हत-गौरव संसार का परित्याग कर, परलोक को चला गया।

हम उनके कलकत्ता के पड़ोसी हैं। हम लोगों का इतिहास उन लोगों से पूर्णतः विपरीत है। मेरे पिता ने अपने प्रयत्न से धन उपार्जित किया था, वे कभी भी घुटनों से नीचे कपड़ा नहीं पहिनते थे, कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखते एवं बाबू-उपाधि प्राप्त करने की उन्हें लालसा नहीं थी। इसलिए मैं उनका एकमात्र पुत्र उनके निकट कृतज्ञ था। मैंने जो लिखना-पढ़ना सीखा एवं अपने प्राण और मान रक्षा के लिए उप-योगी यथेष्ट धन बिना प्रयत्न किए पाया, इसी को मैं परम गौरव का विषय कह कर अनुभव करता हूँ—सूने भण्डार में पैतृक बाबूगीरी के उज्ज्वल इतिहास की अपेक्षा लोहे के सन्दूक में पैतृक कम्पनी के कागज मेरे समीप बहुत अधिक मूल्यवान् जान पड़ते थे।

शायद इसीलिए, कैलाशबाबू अपने पूर्वगौरव की दिवालिया बैंक के ऊपर जिस समय मनमाने लम्बे-चौड़े चैक चलाया करते थे, उस समय वह मुझे बड़ा असह्य लगता था। मेरे मन को लगता, मेरे पिता ने अपने हाथ से धन उपार्जन किया है कह कर कैलाशबाबू, शायद मन-ही-मन हम लोगों के प्रति अवज्ञा अनुभव करते थे। मैं रोष करता एवं सोचता—अवज्ञा के योग्य कौन है ? जो लोग जीवन-भर कठोर त्याग स्वीकार कर, अनेकों प्रलोभनों का अतिक्रम (लाँघ) कर, लौकिक-प्रशंसा की तुच्छ ख्याति की अवहेलना कर अथक एवं सतर्क बुद्धि-कौशल से सम्पूर्ण बाधाओं को प्रतिहत (पराजित) कर, समस्त अनुकूल अवसरों को अपने काम में लाकर, एक-एक चाँदी की सिल चुनकर एक अत्युच्च पिरामिड अकेले अपने ही हाथ से निर्माण कर गए हैं, वे घुटनों के नीचे कपड़े नहीं पहिनते थे, कहकर, छोटे आदमी थे, ऐसा नहीं है।

उस समय आयु छोटी थी। इसीलिए इस प्रकार के तर्क करता, रोष करता। अब आयु अधिक होगई है; इस समय लगता है—हानि ही क्या है। मुझ पर तो बहुत सम्पत्ति है, मुझे किसका अभाव है ? जिन पर कुछ नहीं है, वे यदि अहङ्कार करके सुखी हों, उससे मेरा तो छदाम भर नुकसान नहीं होगा, अपितु उन बेचारों को सान्त्वना मिलेगी।

यह भी देखा गया, मुझे छोड़कर और कोई कैलाशबाबू के ऊपर रोष नहीं करता। कारण, इतना बड़ा निरीह व्यक्ति सचराचर में दिखाई नहीं देता। क्रिया-कर्म में, सुख में, दुःख में पड़ौसियों से उनका पूर्ण सहयोग था। बच्चे से लेकर बुड्ढे तक सभी को देखते ही वे मुँह पर हँसी लिए प्रिय सम्भाषण करते—जहाँ कहीं भी जिसको जो कोई है सभी का कुशल-सम्वाद पूछकर, ही उनकी शिष्टता विराम प्राप्त करती। इसलिए किसी के साथ भी उनका साक्षात् होते ही एक सुदीर्घ प्रश्नोत्तर माला की सृष्टि होती—"अच्छे तो हो ? शशि अच्छी है ? हमारे बड़े बाबू अच्छे हैं ? मधु के लड़के को ज्वर हुआ था, ऐसा सुना था, वह इस समय

ठीक तो है ? हरिचरणबाबू को बहुत समय से नहीं देखा, उन्हें कोई तकलीफ तो नहीं हुई ? तुम्हारे राखाल की क्या खबर है ? घर के बाल-बच्चे सब अच्छे हैं ?" इत्यादि ।

आदमी बहुत साफ-सुथरा है । कपड़े-लत्ते अधिक नहीं थे, परन्तु मिर्जई, चादर, कुर्त्ता, यही क्यों, बिछौना बिछाने का एक प्राचीन ढङ्ग, तकिए का गिलाफ, एक छोटी शतरञ्ज, सबको अपने हाथ से धूप लगा कर, झाड़ कर, दरी तक को साफ कर, तह करके, अरगनी पर लटका कर, सजा कर रखते । जब भी उन्हें देखा जाता, तभी मन को लगता जैसे वे सुसज्जित प्रस्तुत होकर आए हैं । बहुत थोड़ा सामान्य असबाब से भी उनका घर-द्वार समुज्ज्वल बना रहता । ऐसा लगता जैसे उनके और भी अनेक (नौकर) हैं ।

नौकर के अभाव में अनेक बार घर का द्वार बन्द कर, वे अपने ही हाथों से बहुत सजा कर धोती पहनते एवं चादर और कुर्त्ते की आस्तीन में बड़े यत्न और परिश्रम से चुन्नट डाले रहते । उनकी बड़ी-बड़ी जमीदारियाँ एवं बहुमूल्य धन-सम्पत्ति लुप्त हो चुकी थीं, परन्तु एक बहुमूल्य गुलाबपाश, इत्रदान, एक सोने की तश्तरी, एक चाँदी का हुक्का, एक बहुमूल्य शाल और प्राचीनकाल का जामा जोड़ा (कुर्त्ता) और पगड़ी की दारिद्रय का ग्रास होने से बड़े प्रयत्नपूर्वक उन्होंने रक्षा करली थी । कोई-एक उपलक्ष्य उपस्थित होने पर यह वस्तुएँ बाहर निकलतीं एवं नयनजोड़ के विख्यात बाबुओं के गौरव की रक्षा होती ।

इधर कैलाशबाबू मिट्टी के मनुष्य होते हुए भी बातों में जो अहंकार करते, वह जैसे पूर्वजों के प्रति कर्त्तव्य-ज्ञान के कारण करते, सभी लोग उसमें प्रश्रय देते एवं विशेष आनन्द अनुभव करते ।

मुहल्ले के लोग उन्हें 'ठाकुर' दा महाशय' कहते एवं उनके स्थान पर सदैव बहुत से लोगों का समागम होता; परन्तु दरिद्रावस्था में पीछे उनकी तम्बाकू का खर्च न बढ़ जाए, इसलिए प्रायः ही मुहल्ले का कोई-

न-कोई व्यक्ति दो-एक सेर तम्बाकू खरीद कर ले जाकर उनसे कहता—"ठाकुर' दा महाशय' एक बार परीक्षा करके तो देखिए, गया की अच्छी तम्बाकू मिल गई है।"

ठाकुर' दा महाशय' दो-एक कश खींच कर कहते—"अच्छी है भाई, अच्छी तम्बाकू है।" और इसी उपलक्ष्य में साठ-पैंसठ रुपए तोले की तम्बाकू की कहानी उठा देते; एवं जिज्ञासा करते—"उस तम्बाकू का किसी को स्वाद लेकर देखने की इच्छा है या नहीं ?"

सभी जानते कि यदि कोई इच्छा प्रकट करेगा तो अवश्य ही चाबियों का पता नहीं मिलेगा अथवा बहुत खोज के पश्चात् प्रकट होगा कि पुराना नौकर गणेश बेटा कहाँ पर क्या रख देता है, इसका फिर ठिकाना नहीं—गणेश भी बिना प्रतिवाद के सभी अपवाद स्वीकार कर लेगा। इसलिए सभी एक वाक्य कहते—"ठाकुर' दा महाशय' जरूरत नहीं, वह तम्बाकू हम लोगों से सहन न होगी, हमारे लिए यही अच्छी है।"

सुनकर दा पुनरोक्ति न कर, कुछ हँस जाते। सब के विदा लेते समय अचानक बोल उठते—"तो जाओगे ही, तुम लोग कब मेरे यहाँ भोजन करोगे, कहो, देखूँ, भाई।"

तुरन्त ही सब लोग कहते—"वह एक दिन ठीक करके देखा जायगा।"

ठाकुर' दा महाशय' बोलते—"यही ठीक है, जरा वर्षा हो, ठण्डा हो जाय, अन्यथा इस गर्मी में गरिष्ठ भोजन कुछ नहीं।"

जब वर्षा होती, उस समय ठाकुर' दा को कोई उनकी प्रतिज्ञा स्मरण नहीं कराता, अपितु बात उठने पर सब कहते—"इस वर्षा-बादल के हटे बिना सुविधा न होगी।"

छोटे से मकान में रहना उनके लिए अच्छा नहीं दीखता एवं कष्ट भी होता है—इस बात को उनके बन्धु-बान्धव उनके समक्ष स्वीकार करते, अथच कलकत्ते में खरीदने के लिए उपयुक्त मकान ढूँढ़ पाना कितना कठिन है, इस विषय पर भी किसी को सन्देह नहीं था—यही क्यों, आज छः-सात वर्षों से ढूँढ़ते हुए भी किराए पर लेने के लिए एक बड़ा मकान मुहल्ले के किसी व्यक्ति को नहीं दीख पाया—अन्त में ठाकुर' दा महाशय कहते—"तो रहने दो भाई, तुम्हारे पास ही हूँ, यही मेरा सुख है। नयनजोड़ में बड़ा मकान तो पड़ा हुआ ही है, परन्तु वहाँ क्या मन टिकता है ?"

मेरा विश्वास है, ठाकुर' दा भी जानते हैं कि सभी लोग उनकी अवस्था जानते हैं एवं जिस समय वे भूतपूर्व नयनजोड़ को वर्त्तमान कह कर; अनुभव करते हैं एवं अन्य सब लोग भी उसमें योग देते हैं उस समय मन-ही-मन समझते हैं कि परस्पर की यह छलना केवल एक-दूसरे के प्रति सौहार्द्र-वश है।

परन्तु मुझे बड़ी विरक्ति अनुभव होती है। थोड़ी आयु में दूसरे के निरीह-गर्व का भी दमन करने की इच्छा होती है एवं सहस्रों गुरुत्तर अपराधों की तुलना में निर्बुद्धिता ही सबकी अपेक्षा असह्य जान पड़ती है। कैलाशबाबू ठीक निर्बोध नहीं थे, काम-काज में उनकी सहायता एवं परामर्शको सभी लोग प्रार्थनीय अनुभव (आवश्यक) समझते। परन्तु नयनजोड़ के गौरव-प्रकाश के सम्बन्ध में उन्हें रंचमात्र भी ज्ञान नहीं था। सभी लोग उन्हें प्यार करके एवं आमोद करके, किसी असम्भव बात का भी प्रतिवाद नहीं करते थे, अस्तु वे अपनी बात के परिमाण (हद) की रक्षा नहीं कर पाते थे। दूसरे लोग भी जब आमोद करके अथवा उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए नयनजोड़ के कीर्त्ति-कलाप के सम्बन्ध में विपरीत मात्रा में अत्युक्ति का प्रयोग करते; वे अकातर भाव से (चुप-चाप) उस सबको ग्रहण कर लेते एवं स्वप्न में भी सन्देह नहीं करते कि

कोई दूसरा इस बात पर लेशमात्र भी अविश्वास कर सकेगा।

मेरी कभी-कभी इच्छा होती—वृद्ध जिस मिथ्या-दुर्ग का अवलम्बन लेकर रह रहा है एवं मन में इसे चिरस्थायी समझता है, उस दुर्ग को दो तोपों से सबके सामने उड़ा दूँ। एक पक्षी को सुविधापूर्वक डाली के ऊपर बैठे हुए देखकर शिकारी को इच्छा होती है उसे गोली मार दे; पर्वत की गोद में एक पतनोन्मुख पत्थर को देखते ही बालक इच्छा करता है, एक लात मारकर उसे गड्ढे में फेंक दे—जो वस्तु हर समय फड़फड़ाती रहती है, अथच किसी एक-से संलग्न हो जाती है, उसे फेंक देने पर ही जैसे उसका सम्पूर्णता-साधन एवं दर्शकों के मन में तृप्ति लाभ होता है। कैलाशबाबू के 'असत्य' इतने ही सरल हैं, उनकी भित्ति (नींव) इतनी ही दुर्बल है, वे ठीक सत्य-बन्दूक के लक्ष्य के सामने ऐसे छाती फुलाकर नृत्य करते कि उन्हें क्षण भर में ही विनष्ट करने के लिए एक आवेग उपस्थित हो जाता—केवल नितान्त आलस्यवश एवं सर्वजन सम्मत प्रथा का अनुसरण करके, इस कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था।

दूसरा परिच्छेद

अपने अतीत मनोभावों का विश्लेषण करके जहाँ तक याद आता है, वहाँ तक समझता हूँ, कैलाशबाबू के प्रति मेरे आन्तरिक विद्वेष का एक-और गूढ़ कारण था। उसे कुछ विस्तारपूर्वक कहना आवश्यक है।

मैंने बड़े आदमी का लड़का होते हुए भी यथा समय एम० ए० पास की थी, यौवन का सत्त्व होते हुए भी किसी प्रकार के कुसंसर्ग, कुत्सित आमोद में योग नहीं दिया था, एवं अभिभावकों की मृत्यु के पश्चात् स्वयं कर्त्ता होने पर भी मेरे स्वभाव में किसी प्रकार की विकृति उपस्थित नहीं हुई थी। उसके अतिरिक्त चेहरा भी ऐसा है कि उसे अपने मुख से सुन्दर कहने पर अहङ्कार तो हो सकता है, परन्तु असत्य नहीं होगा।

अतएव बंगाल देश के ब्याह-शादी के बाजार में मेरी कीमत जो बहुत अधिक है उसमें कोई सन्देह नहीं—इस बाजार में अपनी वह कीमत मैं पूरी अदा करा लूँगा, ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। धनी-पिता की परम रूपवती एकमात्र विदुषी कन्या मेरी कल्पना में आदर्शरूप से विराज रही थी।

दस हजार, बीस हजार रुपये दहेज के प्रस्ताव लेकर देश-विदेश से मेरे सम्बन्ध आने लगे। मैं अविचलित चित्त से काँटे पर चढ़ा कर उनकी योग्यता का वजन कर लेता था, कोई भी मेरे योग्य नहीं जान पड़ता था। अन्त में भवभूति के समान मेरी धारणा होगई कि—

"क्या जाने कहाँ पर, जन्मा है प्रियतम।
समय असीम है, वसुधा विपुलतम॥"

परन्तु वर्त्तमान समय में एवं छोटे से बंगाल देश में वह असम्भव, दुर्लभ पदार्थ उत्पन्न हुआ था या नहीं, इसमें सन्देह है।

कन्यादायग्रस्तों का झुण्ड प्रतिदिन अनेकों छन्दों में मेरी स्तुति एवं विविध उपचारों से मेरी पूजा करने लगा। कन्या पसन्द हो-या-न-हो, यह पूजा मुझे बुरी नहीं लगती। स्वयं को अच्छा लड़का अनुभव कर, कन्याओं के पिताओं की इस पूजा को मैंने उचित-प्राप्य स्थिर किया। शास्त्रों में पढ़ा जाता है, देवता वर दें या न दें, यथाविधि पूजा न पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं। प्रतिदिन पूजा पाकर मेरे मन में भी उसी प्रकार का अत्युच्च देव-भाव उत्पन्न हो गया।

पहले ही कह चुका हूँ, ठाकुर' दा महाशय' की एक पौत्री थी। उसे अनेकों बार देखा था, परन्तु कभी भी रूपवती कह कर भ्रम नहीं हुआ। अस्तु, उससे विवाह करने की कल्पना भी मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई। परन्तु यह निश्चित कर रक्खा था कि कैलाशबाबू लोगों की मार्फत अथवा स्वयं पौत्री का अर्घ्य देने की इच्छा से मेरी पूजा का ज्ञान करने

के लिए आयेंगे, कारण मैं अच्छा लड़का हूँ। परन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया।

सुन पाया, मेरे किसी मित्र से उन्होंने कहा है, नयनजोड़ के बाबू लोग कभी भी किसी भी सम्बन्ध में स्वयं आगे बढ़ कर किसी से प्रार्थना नहीं करते—कन्या चाहे चिर-कुमारी रह जाय, तो भी उस कुलप्रथा को वे भङ्ग नहीं कर सकेंगे।

सुनकर मुझे बड़ा क्रोध हुआ। वह क्रोध बहुत दिनों तक मेरे मन में रहा—केवल अच्छा लड़का होने के कारण ही, चुप बना रहा।

जिस प्रकार बज्र के साथ बिजली रहती है, उसी प्रकार मेरे चरित्र में क्रोध के साथ-साथ एक कौतुकप्रियता सम्बद्ध थी। वृद्ध को केवल-मात्र पीड़ित करना मेरे द्वारा सम्भव नहीं होता—परन्तु एक दिन अचानक ऐसा कौतुकावह प्लान मस्तिष्क में उदय हुआ कि उस काम में लग जाने के प्रलोभन को सम्वरण नहीं कर पाया।

पहिले ही कह चुका हूँ, वृद्ध को सन्तुष्ट करने के लिए अनेक व्यक्ति अनेकों झूँठी-बातों का सृजन करते थे। मुहल्ले के एक व्यक्ति पेन्शनभोगी डिप्टी मैजिस्ट्रेट प्रायः कहते—"ठाकुर दा ! छोटे लाट साहब के साथ जब भी मुलाकात होती है, वे नयनजोड़ के बाबुओं का समाचार लिए बिना नहीं छोड़ते—साहब कहते हैं, बंगाल देश में वर्द्धमान के राजा और नयनजोड़ के बाबू, केवल यही दो वास्तव में खानदानी वंश हैं।"

ठाकुर' दा बहुत खुश होते एवं भूतपूर्व डिप्टीबाबू से साक्षात्कार होते ही अन्यान्य कुशल-समाचारों के साथ जिज्ञासा करते—"छोटे लाट-साहब अच्छी तरह हैं ? उनकी मेमसाहब अच्छी तरह हैं ? उनके लड़के-लड़की सब अच्छी तरह हैं ?" साहब के साथ जल्दी ही एक दिन भेंट करने जायेंगे, ऐसी इच्छा भी प्रकट करते। परन्तु भूतपूर्व डिप्टी निश्चित-रूप से जानते, नयनजोड़ की सुप्रसिद्ध "चौघुड़ी" (चार घोड़े की बग्घी)

तैयार होकर, दरवाजे पर आते-आते कितने ही छोटे लाट एवं बड़े लाटों का तबादिला हो जाएगा।

मैं एक दिन प्रातःकाल जाकर कैलाशबाबू को एकान्त में बुलाकर चुपके से बोला—"'ठाकुर' दा! कल लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की लेवी (दरबार) में गया था। उन्होंने नयनजोड़ के बाबुओं की बात छेड़ी तो मैंने कहा—'नयनजोड़ के कैलाशबाबू कलकत्ते में ही हैं, सुनकर, छोटे लाट साहब 'अब तक भेंट करने नहीं आ सके' कह कर बड़े दुखी हुए—कह दिया—'आज ही दोपहर के समय वे चुपचाप तुम से भेंट करने आयेंगे।"

और कोई होता तो बात असम्भव समझ में आती एवं और किसी से सम्बन्धित होती तो कैलाशबाबू भी इस बात की हँसी उड़ाते, परन्तु स्वयं से सम्बन्धित होने के कारण; यह समाचार उन्हें लेशमात्र अविश्वसनीय नहीं जान पड़ा। सुनकर जिस प्रकार खुश हुए, उसी प्रकार अस्थिर हो उठे—"कहाँ बैठाना होगा, क्या करना होगा, किस प्रकार अभ्यर्थना करेंगे—किस उपाय से नयनजोड़ के गौरव की रक्षा हो सकेगी", कुछ भी नहीं सोच पाए। इसके अतिरिक्त वे अंग्रेजी नहीं जानते, बात किस प्रकार कर सकेंगे, यह भी एक समस्या थी।

मैं बोला—"उसकी चिन्ता न करें, उनके साथ एक व्यक्ति दुभाषिया रहेगा; परन्तु छोटे लाट साहब की विशेष इच्छा है, और कोई उपस्थित न रहे।"

मध्याह्न में मुहल्ले के अधिकांश लोग जब ऑफिस गए हुए थे एवं शेष व्यक्ति दरवाजा बन्द कर निद्रामग्न थे, उस समय कैलाशबाबू के घर के सामने एक बग्घी आकर खड़ी हुई।

तमगाधारी चपरासी ने उन्हें खबर दी—"छोटे लाट साहब आए हैं।" ठाकुर' दा प्राचीनकाल में प्रचलित शुभ्र कुर्त्ता-पायजामा एवं पगड़ी पहन कर तैयार बैठे थे। अपने पुराने नौकर गणेश को भी अपनी

धोती, चादर, कुर्त्ता पहिनाकर ठीक-ठाक कर रक्खा था। छोटे लाट-साहब के आगमन का सम्वाद सुनते ही हाँफते-हाँफते काँपते-काँपते दौड़ते हुए द्वार पर जा उपस्थित हुए---एवं झुके हुए शरीर से बारम्बार सलाम करते-करते अंग्रेज वेषधारी मेरे एक प्रिय वयस्क को घर में ले गए।

वहाँ चौकी के ऊपर उनका एकमात्र बहुमूल्य शाल बिछा हुआ था, उसी के ऊपर नकली-छोटे लाट को बैठाकर उर्दू भाषा में एक अत्यन्त विनीत सुदीर्घ वक्तृता (भाषण) का पाठ किया एवं नजर (भेंट) के रूप में सोने की रकाबी (तश्तरी) में अपनी बहु-कष्ट-रक्षित कुलक्रमागत एक अशर्फियों की माला रख दी। पुराना नौकर गणेश गुलाबपाश एवं इत्रदान लेकर उपस्थित था।

कैलाशबाबू बारम्बार आक्षेप करने लगे कि उनके नयनजोड़ के मकान में हुजूर-बहादुर की पदधूलि पड़ती तो वे यथासाध्य यथोचित आतिथ्य-सत्कार का आयोजन कर सकते थे---कलकत्ते में वे प्रवासी हैं---इस जगह वे जल-हीन मछली की भाँति सभी बातों में अशक्त हैं---इत्यादि।

मेरा मित्र बड़े हैट-सहित अत्यन्त गम्भीर भाव से मस्तक हिलाने लगा। अंग्रेजी कायदे के अनुसार ऐसी जगह पर मस्तक पर टोपी न रखने की बात (चाल) है, परन्तु मेरे मित्र ने पकड़े जाने के भय से यथा-सम्भव दबे-ढँके रहने के प्रयत्न में वे टोप नहीं उतारा। कैलाशबाबू एवं उनके मदान्ध पुराने नौकर को छोड़कर और सब लोग क्षण भर में ही बंगाली के इस छद्मवेष को पकड़ सकते थे।

दस मिनट तक बैठे रहने के उपरान्त मेरा मित्र उठकर खड़ा हो गया एवं पहले ही दी गई शिक्षा के अनुसार चपरासी ने रकाबी (तश्तरी) सहित अशर्फियों की माला, चौकी के ऊपर का वह शाल एवं नौकर के हाथ में से गुलाबपाश एवं इत्रदान लेकर छद्मवेषी की गाड़ी

में रख दिए—कैलाशबाबू ने समझा, छोटे लाट की ऐसी ही प्रथा होगी। मैं गुप्तरूप से एक समीपवर्ती मकान में छिपकर देख रहा था एवं रुकी हुई हँसी के आवेग से मेरा अस्थि-पञ्जर विदीर्ण हो जाने का उपक्रम कर रहा था।

अन्त में किसी भी प्रकार और न रह पाने पर, दौड़कर समीपवर्ती एक मकान में जाकर प्रविष्ट हो गया—एवं उस स्थान पर हँसी का उच्छ्वास उन्मुक्त करके अचानक ही देखा, एक लड़की तख्तपोश के ऊपर औंधी पड़ी हुई फूट-फूटकर रो रही है।

मुझे अचानक ही घर में प्रविष्ट होते एवं हँसते हुए देखकर वह उसी क्षण तख्त छोड़कर खड़ी होगई एवं अश्रुरुद्ध कण्ठ में क्रोध की गर्जन लाकर, मेरे मुख के ऊपर सजल; विपुल कृष्णनेत्रों से सुतीक्ष्ण; विद्युत्-वर्षण करती हुई बोली—"मेरे दादा महाशय ने तुम लोगों का क्या किया था—क्यों तुम लोग उन्हें ठग लाए हो—क्यों आए हो तुम लोग ?"—अन्त में और कोई बात नहीं जुटी; वाणीरुद्ध हो जाने पर मुँह में कपड़ा देकर रो उठी।

कहाँ गया मेरा हँसी का आवेग ? मैंने जो काम किया था, उसमें कौतुक छोड़कर और जो कुछ था, वह उस समय मेरे मस्तिष्क में नहीं आया था—अचानक देखा, अत्यन्त कोमल स्थान पर अत्यन्त कठिन आघात किया है; अचानक अपने किए हुए कर्म की वीभत्स निष्ठुरता मेरे सम्मुख दैदीप्यमान हो उठी; लज्जा और अनुताप से पदाहत कुत्ते की भाँति घर से चुपचाप बाहर निकल गया। वृद्ध ने मेरे निकट क्या दोष किया था। उसके निरीह अहङ्कार ने तो कभी भी किसी प्राणी को आघात नहीं पहुँचाया। मेरे अहङ्कार ने क्यों ऐसी हिंस्र-मूर्त्ति धारण करली ?

उसके अतिरिक्त एक और विषय की ओर अचानक दृष्टि खुल गई। अब तक मैं कुसुम को किसी अविवाहित पात्र की प्रसन्नदृष्टिपात

की प्रतीक्षा में संरक्षित पण्य-पदार्थ (व्यापार की वस्तु) की भाँति देखता रहा था—सोचता था, मैं पसन्द नहीं करता इसीलिए वह पड़ी हुई है; दैवात् जिसे पसन्द होगी, वह उसी की हो जाएगी । आज देखा, इस घर के कोने में इस बालिका मूर्ति के हृदय-अन्तराल में एक मानव-हृदय है। वह अपने ही सुख-दुःख, अनुराग-विराग को लिए एक अन्तःकरण, एक ओर अज्ञेय-अतीत और एक ओर अकल्पनीय भविष्य—नामक दो रहस्य-राज्यों की ओर पूर्व और पश्चिम में फैली हुई है । जिस मनुष्य के हृदय है, वह क्या केवल दहेज के रुपयों एवं नाक-आँख के परिमाण को माप कर पसन्द करके ही लेने के योग्य है ।

सारी रात नींद नहीं आई । दूसरे दिन उषःकाल में ही वृद्ध के समस्त अपहृत बहुमूल्य धन को लेकर चोर की भाँति चुपचाप ठाकुर'दा के घर में प्रविष्ट हुआ—इच्छा थी, किसी से कुछ भी न कहकर चुप-चाप नौकर के हाथ में सब वस्तुओं को दे आऊँ ।

नौकर को न देख पाने के कारण जब इधर-उधर झाँक रहा था, इसी समय समीपवर्त्ती घर में वृद्ध के साथ बालिका का कथोपकथन सुन पाया । बालिका सुमधुर, स्नेहपूर्ण स्वर में जिज्ञासा कर रही थी—"दादा महाशय ! कल लाट साहब ने तुमसे क्या कहा ?" ठाकुरदा' अत्यन्त प्रसन्नचित्त से लाट साहब के मुख से निकले प्राचीन नयनजोड़-वंश के विस्तृत काल्पनिक गुणानुवाद को सुना रहे थे । बालिका उसे सुनकर अत्यन्त उत्साह प्रकट कर रही थी ।

वृद्ध अभिभावक के प्रति मातृहृदया इस क्षुद्र बालिका की सकरुण छलना से मेरे दोनों नेत्रों में जल छलछलाकर भर आया । बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा—अन्त में ठाकुर'दा के अपनी कहानी समाप्त कर चले जाने पर, अपनी प्रतारणा का सब सामान लेकर बालिका के समीप जा उपस्थित हुआ एवं चुपचाप उसके सामने रखकर चला आया ।

वर्त्तमान काल की प्रथा के अनुसार अन्य किसी दिन वृद्ध को देखकर किसी प्रकार का अभिवादन नहीं करता था—आज उनको प्रणाम की। वृद्ध ने निश्चित रूप से मन में सोचा—कल के दिन छोटे लाट-साहब का उनके मकान पर आगमन होने से ही अचानक उनके प्रति मेरी भक्ति का उद्रेक हो उठा है। वे पुलकित हो, सैकड़ों मुख से छोटे लाट-साहब की कहानी बनाकर कहने लगे—मैंने भी कोई प्रतिवाद न करके उसमें योग दिया। अन्य बाहरी लोगों में से जिन्होंने भी सुना, उन्होंने इस बात को आद्योपान्त कहानी (काल्पनिक बात) ठहरा दिया, एवं कौतुक से वृद्ध के साथ सभी बातों में हाँ-में-हाँ मिला दी।

सब के उठकर चले जाने पर मैंने अत्यन्त सलज्ज मुख एवं दीन-भाव से वृद्ध के समीप एक प्रस्ताव किया। बोला, यद्यपि नयनजोड़ के बाबुओं के साथ हमारे वंश की मर्यादा की तुलना नहीं हो सकती, तथापि—

प्रस्ताव के समाप्त होते ही वृद्ध ने मुझे छाती से चिपटा लिया एवं आनन्द के आवेग में कह उठे—"मैं गरीब हूँ, मेरा ऐसा सौभाग्य होगा इसे मैं नहीं जानता था, भाई—मेरी कुसुम ने बहुत पुण्य किए हैं तभी तुम्हें आज पा सकी है।"

कहते-कहते वृद्ध के नेत्रों से जल गिरने लगा।

वृद्ध ने, आज यह पहली बार, अपने महिमान्वितपूर्वजों के प्रति कर्तव्य भुलाकर स्वीकार किया कि वे गरीब हैं, स्वीकार किया कि मुझे प्राप्त करके नयनजोड़-वंश के गौरव की हानि नहीं हुई। मैं जिस समय वृद्ध को अपदस्थ करने के लिए षडयन्त्र रच रहा था, उस समय वृद्ध मुझे परम सत्पात्र समझ कर एकान्त मन से कामना कर रहे थे।

उद्धार

गौरी प्राचीन धनी वंश की अत्यन्त आदर (लाड़-प्यार) में पली हुई सुन्दरी कन्या है। उसके पति परेश ने दरिद्रावस्था से निकल कर, अब अपने उपार्जन द्वारा कुछ तरक्की कर ली है। जितने दिन तक वह दरिद्र रहा, उतने समय तक 'कन्या को कहीं कष्ट न हो' इस भय से उसके सास-श्वसुर ने अपने घर में नहीं भेजा। गौरी कुछ अधिक वयस्क होने पर ही अपने पति-गृह में आई।

सम्भवतः इन सब कारणों से ही परेश अपनी सुन्दरी युवती स्त्री को पूर्णतः अपने हाथ की वस्तु अनुभव नहीं करता था। और शायद सन्दिग्ध (बहमी) स्वभाव उसमें एक तरह की व्याधि बनकर प्रविष्ट हो गया था।

परेश पश्चिम के एक छोटे से शहर में वकालत करता था, घर के आत्मीय-स्वजनों में बड़ा कोई नहीं था, एकाकिनी (अकेली) स्त्री के लिए उसका चित्त उद्विग्न हो उठता।

बीच-बीच में कभी-कभी वह अचानक ही असमय में अदालत से घर आ उपस्थित होता। पहले-पहल स्वामी के इस प्रकार के आकस्मिक अभ्युदय का कारण गौरी ठीक-ठीक नहीं समझ पाती थी।

बीच-बीच में परेश अकारण ही एक-एक करके नौकरों को हटा देने लगा। किसी भी नौकर का अधिक समय तक रहना उसे पसन्द नहीं होता था। विशेषतः असुविधा की शंका से गौरी जिस नौकर को रखने के लिए अधिक आग्रह करती उसे परेश एक क्षण के लिए भी स्थान नहीं देता। तेजस्विनी गौरी को इससे जितना ही आघात अनुभव होता, पति उतना ही अस्थिर होकर कभी-कभी अद्भुत व्यवहार कर उठा।

आत्म-सम्वरण न कर पाने पर जिस समय परेश ने दासी को गुप्त रूप से बुलाकर अनेक प्रकार के संदिग्ध प्रश्नों की पूछ-ताछ आरम्भ की, तब वह सब बातें गौरी को भी सुनाई पड़ने लगीं। अभिमानिनी, स्वल्पभाषिणी स्त्री अपमान से आहत सिंहिनी की भाँति भीतर-ही-भीतर जलने लगी एवं इस उन्मत्त सन्देह ने पति-पत्नि के बीच प्रलय-खड्ग के समान पड़ कर दोनों को एक बार में ही घायल कर दिया।

गौरी के समीप अपने तीव्र-सन्देह को प्रकट करके जब एक बार लज्जा भंग हो गई, तब परेश ने स्पष्टतः प्रतिदिन पग-पग पर आशंका व्यक्त करके स्त्री के साथ कलह करना आरम्भ कर दिया। और गौरी जितना ही मौन रहकर, अवज्ञा प्रदर्शित कर एवं कठिन आघात के समान तीक्ष्ण कटाक्ष द्वारा उसे अपादमस्तक क्षत-विक्षत करने लगी, उतनी ही उसकी संशय-मत्तता जैसे और भी अधिक वृद्धि की ओर चल दी।

इस प्रकार पति-सुख से वंचित होकर पुत्र-हीना तरुणी ने धर्म में मन लगाया हरि-सभा के नवीन प्रचारक ब्रह्मचारी परमानन्द स्वामी को बुलाकर मन्त्र लिया एवं उनसे भागवत की व्याख्या सुनना आरम्भ

कर दिया। नारी-हृदय का समस्त व्यर्थ स्नेह-प्रेम केवल भक्ति-आकार में पुंजीभूत होकर गुरु देव के चरणों में समर्पित हो उठा ।

परमानन्द के साधु-चरित्र के सम्बन्ध में देश-विदेश में किसी के मन में सन्देह भी नहीं था। सभी उनकी पूजा करते थे । परेश इनके सम्बन्ध में मुँह खोलकर सन्देह प्रकट नहीं कर पाता था, इसीलिए वह (सन्देह) गुप्त फोड़े की भाँति क्रमशः उसके मर्मस्थल के समीप तक कुरेदता हुआ बढ़ने लगा ।

एक दिन सामान्य कारण पर ही विष उबल पड़ा। स्त्री के समक्ष परमानन्द का उल्लेख करते हुए उसे 'दुश्चरित्र, पाखण्डी' कहकर गाली दी एवं कहा—"अपने शालग्राम का स्पर्श कर शपथ पूर्वक कह देखो, उस बक-धार्मिक (बगुले के समान धर्मात्मा) को तुम मन-ही-मन प्यार नहीं करती हो ?"

चोट खाई हुई सर्पिणी की भाँति क्षणभर में ही उग्र रूप धारण कर मिथ्या-स्पर्द्धा द्वारा पति को छेदती हुई गौरी ने रुद्ध कण्ठ से कहा—"प्यार करती हूँ, तुम क्या करना चाहते हो, करो।" परेश उसी समय घर में ताला लगा कर, उसे बन्द कर अदालत को चला गया।

असह्य क्रोध में भरी गौरी किसी प्रकार द्वार खुलवा कर, उसी समय मकान से निकल गई।

परमानन्द एकान्त घर में जन-हीन मध्याह्न काल में शास्त्र-पाठ कर रहे थे। अचानक ही अमेघवाहिनी-विद्युल्लता (मेघ-हीना बिजली) की भाँति गौरी ब्रह्मचारी के शास्त्राध्यन के बीच आकर गिर पड़ी।

गुरु ने कहा—"यह क्या ?"

शिष्या बोली—"गुरुदेव ! इस अपमान भरे संसार से मेरा उद्धार करके ले चलो, तुम्हारी सेवा में, मैं अपना जीवन उत्सर्ग कर दूँगी।"

परमानन्द ने कठोर भर्त्सना करके गौरी को घर लौटा दिया।

परन्तु, हाय गुरुदेव ! उस दिन का वह अचानक टूटा हुआ अध्ययन-सूत्र क्या उसी प्रकार से जुड़ सका।

परेश ने घर आकर, खुले हुए द्वार देख, स्त्री से पूछा—"यहाँ कौन आया था।"

गौरी ने कहा—"कोई नहीं आया, मैं गुरुदेव के घर गई थी।"

परेश क्षणभर के लिए अप्रतिभ एवं दूसरे ही क्षण रक्तवर्ण होकर बोला—"क्यों गई थीं ?"

गौरी ने कहा—"अपनी खुशी।"

उस दिन से पहरा बैठाकर, स्त्री को घर में बन्द कर, परेश ने इस प्रकार उपद्रव आरम्भ किया कि शहर में बदनामी फैल गई।

इस सम्पूर्ण कुत्सित अपमान और अत्याचार के सम्वाद से परमानन्द की हरि-चिन्ता दूर हो गई। इस नगर को अविलम्ब त्याग देना ही उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा, परन्तु उत्पीड़ित को छोड़कर किसी भी प्रकार दूर नहीं जा पाए। सन्यासी के इन कितने ही दिनों के दिन-रात का इतिहास केवल अन्तर्यामी ही जानते हैं।

अन्त में पहरा लगा होने पर भी गौरी को एक दिन पत्र मिला—'वत्से ! विचार करके देखा है, इससे पूर्व भी अनेक साध्वी साधक स्त्रियों ने कृष्ण के प्रेम में संसार को त्यागा है। यदि संसार के अत्याचार से, हरि-चरणों से तुम्हारा हृदय विचलित हो उठा है; तब मैं समझता हूँ मैं भगवान की सहायता द्वारा उनकी सेविका का उद्धार कर, प्रभु के अभय-चरण कमलों में उत्सर्ग करने के लिए प्रयत्नशील होऊँ। २५ वें फाल्गुन (फाल्गुन शुक्ला एकादशी) बुधवार को अपराह्न दो बजे के समय इच्छा करने पर अपनी पुष्करिणी (तालाब) के तट पर तुम मेरा साक्षात्कार कर सकती हो।

गौरी ने पत्र को केशों में बाँधकर जूड़े में लगा लिया। फाल्गुन शुक्ला एकादशी को मध्याह्न काल में स्नान से पूर्व ही केश खोलने के

समय देखा, चिट्ठी नहीं है। अचानक सन्देह हुआ, सम्भवतः चिट्ठी किसी बिछौने पर गिर पड़ी होगी एवं वह उसके पति के हाथ में जा पड़ी होगी। पति उस पत्र को पढ़ कर ईर्ष्या से जल उठे होंगे—यह सोचकर गौरी ने मन-ही-मन एक प्रकार के जलनपूर्ण आनन्द का अनुभव किया, परन्तु उसका शिरोभूषण पत्र पाखण्डी के हस्त-स्पर्श से लाँञ्छित हो रहा होगा—यह कल्पना भी उसे सह्य नहीं हुई। शीघ्रतापूर्वक स्वामी के कमरे में गई। देखा, पति पृथ्वी पर पड़े हुए 'गों-गों' कर रहे हैं, मुँह से झाग गिर रहे हैं, आँखों की पुतली ऊपर को चढ़ गई हैं। दाहिने हाथ की मुट्ठी में लगे पत्र को निकाल कर, शीघ्रतापूर्वक डाक्टर को बुला भेजा।

डाक्टर ने आकर कहा—'अपोप्लेक्सी'—तभी रोगी की मृत्यु हो गई।

उस दिन अदालत में परेश का एक जरूरी मुकद्दमा था। सन्यासी का इतना अधिक पतन हो गया था कि वे उस सम्वाद को पाकर भी गौरी के साथ साक्षात्कार करने के लिए तैयार हो रहे थे।

सद्यविधवा गौरी ने जिस समय खिड़की में होकर गुरुदेव को चोर के समान पुष्करिणी के तट पर देखा, उसी समय वज्र-चकित की भाँति दृष्टि नीचे झुका ली। गुरु कहाँ से कहाँ गिर पड़े, जैसे बिजली के प्रकाश से अचानक इसी समय उसका हृदय प्रकाशित हो उठा।

गुरु ने पुकारा—"गौरी!"

गौरी ने कहा—"आ रही हूँ, गुरुदेव।"

मृत्यु का समाचार पाकर परेश के मित्रगण जिस समय सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित हुए, देखा—गौरी का मृत शरीर भी बगल में पड़ा है। वह विष खाकर मर गई थी। आधुनिक काल में इस आश्चर्यजनक सह-मरण के दृष्टान्त एवं सती के माहात्म्य से सभी लोग स्तम्भित रह गए।

खोकाबाबू का प्रत्यावर्त्तन*

पहिला परिच्छेद

राईचरण जब बाबुओं के मकान में पहले-पहल नौकरी करने आया, तब उसकी आयु बारह वर्ष की थी। यशोहर जिले में घर था। लम्बे केश, बड़ी-बड़ी आंखें, सांवले-चिकने, छरहरे शरीर का बालक। जाति का कायस्थ। उसके स्वामी भी कायस्थ थे। बाबुओं के एक वर्ष की आयु वाले एक शिशु के रक्षण एवं पालन-कार्य में सहायता करना उसका प्रधान कर्त्तव्य था।

उसी शिशु ने कालक्रम से राईचरण की गोद छोड़कर स्कूल में, स्कूल छोड़कर कॉलिज में, अन्त में कॉलिज छोड़कर मुन्सिफी में प्रवेश किया। राईचरण अब भी उसका नौकर है।

उसका एक और मालिक बढ़ गया है; 'बहूजी' घर में आगई हैं; अस्तु अनुकूल बाबू के ऊपर राईचरण का पहले जितना अधिकार था, उसका अधिकांश नवीन गृहिणी के हाथ जा लगा है।

---

* लल्ला बाबू का लौटना।

परन्तु गृहिणी ने जिस प्रकार राईचरण के पूर्वाधिकार को कुछ कम कर दिया है, उसी प्रकार एक नवीन अधिकार देकर उसे बहुत-कुछ अंशों में पूर्ण भी कर दिया है। अनुकूल को कुछ दिन हुए एक पुत्र जन्म का लाभ प्राप्त हुआ है—एवं राईचरण ने केवल अपनी चेष्टा एवं अध्यवसाय से उसे सम्पूर्ण रूपेण आवृत्त कर लिया है।

उसे ऐसे उत्साह सहित हिलाता-डुलाता है, ऐसी निपुणता सहित उसके दोनों हाथ पकड़ कर आकाश की ओर उछालता है, उसके मुँह के समीप पहुँच कर इस प्रकार चिल्लाते हुए सिर हिलाता है, उत्तर की कोई प्रत्याशा न कर ऐसे सभी पूर्णतः अर्थहीन, असंगत प्रश्न शिशु से पूछना आरम्भ कर देता है कि वह नन्हा-सा आनुकौलव (अनुकूल का पुत्र) राईचरण को देखकर एकदम पुलकित हो उठता है।

अन्त में बालक जब घुटनों के बल अत्यन्त सावधानी से चौखट पार करने लगा एवं किसी के पकड़ने को आने पर खिलखिलाता हुआ द्रुतवेग से निरापद स्थान में छिपने की चेष्टा करने लगता, तब राईचरण उसके असाधारण चातुर्य एवं विचारशक्ति को देखकर चमत्कृत हो जाता। माँ के समीप जाकर सगर्व, आश्चर्यसहित कहता—"माँ! तुम्हारा लड़का बड़ा होकर जज बनेगा, पाँच हजार रुपए पाया करेगा।"

पृथ्वी पर और-कोई भी मानव-सन्तान इस आयु में चौखट पार करना आदि असम्भव चातुरी का परिचय दे सकती है, यह राईचरण की विचारशक्ति से परे था, केवल भविष्य में जज होने वाले [बालकों] के पक्ष में ही यह कुछ-आश्चर्यजनक न था।

अन्त में शिशु ने जब डगमगाते हुए चलना आरम्भ किया, तो वह एक आश्चर्यजनक बात हुई एवं जब माँ को 'माँ', बुआ को 'उआ' एवं राईचरण को 'चन्न' कह कर बोलना आरम्भ किया, तब राईचरण उस प्रत्ययातीत (आयु की अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण) सम्वाद की जिस-तिस के समक्ष घोषणा करने लगा।

सबकी अपेक्षा आश्चर्य का विषय यह था कि 'माँ को माँ कहता है, बुआ को बुआ कहता है, परन्तु मुझे कहता है चन्न।' वास्तव में, बच्चे के मस्तिष्क में यह बुद्धि किस प्रकार जाग्रत हुई, यह कहना मुश्किल है। निश्चय ही कोई वयस्क व्यक्ति कभी-भी ऐसी अलौकिकता का परिचय नहीं दे सकता एवं देने पर भी उसे जज का पद प्राप्त होने की सम्भावना के सम्बन्ध में जनसाधारण को सन्देह बना रहता।

कुछ दिन बाद से मुँह में लगाम लगाकर राईचरण को घोड़ा बनना पड़ता है। एवं पहलवान बन कर उसे शिशु के साथ कुश्ती लड़नी पड़ती है—फिर हार मानकर पृथ्वी पर न गिर पड़ने से भारी शामत आ जाती है।

इसी समय अनुकूल का पद्मा-नदी-तीरवर्त्ती एक जिले में तबादिला होगया। अनुकूल अपने शिशु के लिए कलकत्ते से एक ठेलागाड़ी ले गए। साटिन का कुर्त्ता और ज़री की एक टोपी, हाथ में सोने के कड़े एवं पाँवों में दो लच्छे पहिना कर राईचरण नवकुमार को दोनों समय गाड़ी में बैठाकर हवा खिलाने ले जाता।

वर्षाकाल आया। भूखी पद्मानदी उद्यान, ग्राम तथा खेतों को एक-एक ग्रास में मुँह के भीतर रखने लगी। बालू के ऊपर के काशवन एवं झाड़-झंखाड़ पानी में डूब गए। कगारों के धसकने के अविश्राम झप्-झप् शब्द एवं जल की गर्जन से दशों दिशाएँ मुखरित हो उठीं एवं द्रुतगति से बहती हुई फेनराशि नदी की तीव्रगति को प्रत्यक्ष प्रदर्शित कर उठी।

अपराह्न में बादल घिर आये थे, परन्तु वर्षा की कोई सम्भावना नहीं थी। राईचरण का खामखयाली क्षुद्र स्वामी किसी भी प्रकार घर में नहीं रहना चाहता। गाड़ी के ऊपर चढ़ बैठा। राईचरण धीरे-धीरे गाड़ी चलाता हुआ धान के खेतों के समीप नदी के किनारे आ उपस्थित

हुआ। नदी में एक भी नाव नहीं थी, खेतों में भी कोई आदमी नहीं था—बादलों के छिद्रों में से दिखाई पड़ा, उस पार जन-हीन बालुका तट पर शब्द-हीन दीप्त-समारोह के साथ सूर्यास्त का आयोजन हो रहा है। उस निस्तब्धता के बीच शिशु सहसा एक ओर उङ्गली उठाते हुए बोला—"चन्न, फूः।"

कुछ दूर पर ही सजल, पंकिल भूमि (दलदल) के ऊपर एक बड़े कदम्ब वृक्ष की ऊँची डालियों पर बहुत से कदम्ब के फूल खिल रहे थे, उन्हीं की ओर शिशु की क्षुब्ध-दृष्टि आकर्षित हुई थी। दो–चार दिन हुए, राईचरण ने सींकों में गूँथकर उसके लिए कदम्ब फूलों की एक गाड़ी बनादी थी, उसमें रस्सी बाँधकर खींचने पर ऐसा आनन्द जान पड़ता था कि उस दिन राईचरण को फिर (अपने मुँह में) लगाम नहीं लगानी पड़ी ; घोड़े की अपेक्षा वह एकदम सईस के पद पर जा चढ़ा था।

दलदल में होकर फूल तोड़ने के लिए जाने की राईचरण की इच्छा नहीं हुई—झटपट विपरीत दिशा की ओर उङ्गली उठाता हुआ बोला—"देखो, देखो, वह–ये, देखो पक्षी, वह उड़ गया—ए गया। अरे पक्षी, आ···आ।" इस प्रकार अविश्रान्त विचित्र कलरव करता-करता शीघ्रतापूर्वक गाड़ी चलाने लगा।

परन्तु जिस लड़के की भविष्य में जज होने की कोई सम्भावना है, उसे इस प्रकार सामान्य उपाय से भुलावे में डालने की चेष्टा करना व्यर्थ है—विशेष कर चारों ओर दृष्टि–आकर्षण को उपयोगी कुछ भी नहीं था एवं काल्पनिक पक्षी द्वारा अधिक देर तक काम नहीं चल सकता था।

राईचरण बोला—"तब तुम गाड़ी में बैठे रहो, मैं झटपट फूल तोड़े लाता हूँ। खबरदार, पानी के किनारे मत जाना।" कह कर घुटनों तक कपड़ ऊँचे कर कदम्ब वृक्ष की ओर चल दिया।

परन्तु वह जो पानी के किनारे जाने का निषेध कर गया था, उससे शिशु का मन कदम्ब के फूलों से हटकर, उसी क्षण पानी की ओर दौड़ने को हुआ। देखा, पानी खल्-खल्, छल्-छल् करता बहता जारहा है ; जैसे शरारत करके किसी-एक बड़े राईचरण के हाथ से निकल कर एक लाख-शिशुओं का प्रवाह सहास्य-कलस्वर में निषिद्ध स्थान की ओर द्रुतवेग से भागा जारहा हो।

उसके इस बुरे दृष्टान्त से मानव-शिशु का चित्त चञ्चल हो उठा। गाड़ी से धीरे-धीरे उतर कर पानी के किनारे जा पहुँचा—एक बड़ा तिनका उठाकर उसे मछली पकड़ने की बंसी समझ, झुका कर मछली पकड़ने लगा—दूरवर्त्ती जलराशि अस्फुट कलभाषा में शिशु को बारम्बार अपने क्रीड़ा-घर में आने को आह्वान करने लगी।

एकबार छप् करके एक शब्द हुआ, परन्तु बरसाती पद्मा नदी के तट पर ऐसे शब्द कितने ही सुनाई पड़ते हैं। राईचरण ने झोली भरकर कदम्ब के फूल तोड़े। पेड़ से नीचे उतर कर सहास्यमुख गाड़ी के समीप आकर देखा—कोई नहीं है। चारों ओर खूब देखा, कहीं भी, किसी का कोई चिह्न नहीं था।

क्षणभर में ही राईचरण के शरीर का रक्त बर्फ की भाँति जम गया। समस्त संसार मलिन, विवर्ण धुएँ की भांति सामने आगया। विदीर्ण हृदय के भीतर से एक बार प्राणपण से चीत्कार करता हुआ पुकार उठा—"बाबू, खोकाबाबू—लक्ष्मीदादा, बाबू हमारे।"

परन्तु 'चन्न' कहकर किसी ने उत्तर नहीं दिया, शरारत करते हुए किसी शिशु का कण्ठ हँस नहीं उठा ; केवल पद्मा पूर्ववत् छल्-छल्, खल्-खल् करती निरन्तर बहती रही, जैसे वह कुछ नहीं जानती, एवं पृथ्वी की इन-सब सामान्य घटनाओं में मन लगाने को उसे जैसे एक पल का भी समय नहीं है।

सन्ध्या हो जाने पर उत्कण्ठित जननी (माता) ने चारों ओर आदमी भेज दिए। हाथ में लालटेन लिएं हुए लोगों ने नदी-तट पर आकर देखा, राईचरण रात्रि के आंधी-तूफान की भाँति सम्पूर्ण पृथ्वी पर "बाबू—खोकाबाबू हमारे" कहता हुआ, भग्न-कण्ठ से चीत्कार करता हुआ दौड़ रहा है। अन्त में घर लौटकर राईचरण धड़ाम से मालकिन के पाँवों के समीप आकर पछाड़ खाकर गिर पड़ा। उससे जितनी जिज्ञासा की जाती; वह रोता हुआ कहता—"जानता नहीं, माँ।"

यद्यपि सभी मन-ही-मन समझ गए कि यह पद्मा का ही काम है, तथापि गाँव के बाहर जो एक बनजारों का दल ठहरा हुआ था, उसके प्रति भी सन्देह दूर नहीं हुआ। एवं मालकिन के मन में यह संदेह उपस्थित हुआ कि, राईचरण ने ही कहीं चोरी न की हो; यही क्यों; उसे बुलाकर अत्यन्त अनुनयपूर्वक बोलीं—"तू मेरे बच्चे को लौटा ला—तू जितने रुपये चाहेगा, तुझे दूँगी।" सुनकर राईचरण ने केवल अपने मस्तक को ठोंका। गृहिणी ने उसे निकाल कर बाहर कर दिया।

अनुकूलबाबू ने अपनी पत्नी के मन से राईचरण के प्रति अन्याय-पूर्ण-सन्देह को दूर करने की चेष्टा की; पूछा था—'राईचरण ऐसा जघन्य कार्य किस उद्देश्य से कर सकता है?' गृहिणी बोली—"क्यों? उसके शरीर पर सोने के गहने थे।"

द्वितीय परिच्छेद

राईचरण देश को लौट गया। अबतक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था, इस बार विशेष आशा भी नहीं थी। परन्तु दैवक्रम से सालभर नहीं बीती कि उसकी स्त्री अपनी अधिक उम्र में एक बालक को जन्म देकर लोकलीला-सम्वरण कर (मर) गई।

इस नवजात-शिशु के प्रति राईचरण के हृदय में अत्यन्त द्वेष उत्पन्न हुआ। मन में सोचा; यह मानो छल करके खोकाबाबू के स्थान

पर अधिकार करने को आया है। सोचा, स्वामी के एकमात्र पुत्र को जल में डुबाकर, स्वयं पुत्र-सुख का उपभोग करना जैसे एक महापाप है। राईचरण की विधवा-बहिन यदि नहीं होती तो यह बालक पृथ्वी की वायु का अधिक दिनों तक उपभोग नहीं कर पाता।

आश्चर्य की बात यही है कि इस बालक ने भी कुछ दिन बाद चौखट पार करना आरम्भ कर दिया, एवं सब प्रकार के निषेध का उल्लंघन करके सकौतुक-चातुरी को प्रदर्शित करने लगा। यही क्यों, इसका कण्ठस्वर, हास्य-क्रन्दनध्वनि भी बहुत कुछ उसी शिशु के समान थी। किसी-किसी दिन जब इसका रोना सुनता, राईचरण का हृदय सहसा धड़कने लगता ; मन को लगा—दादाबाबू, राईचरण से छिपकर कहीं रो रहे हैं।

फेलना—राईचरण की बहिन ने उसका नाम रक्खा फेलना—यथासमय बुआ को बुआ कहकर पुकारने लगा। उस परिचित पुकार को सुनकर एक दिन अचानक राईचरण ने मन में सोचा—"तब तो खोका-बाबू मेरे मोह को नहीं छोड़ सके हैं। उन्होंने मेरे घर में आकर जन्म-ग्रहण किया है।"

इस विश्वास के अनुकूल कई अकाट्य युक्तियाँ थीं। प्रथम तो उनके जाने के थोड़े ही विलम्ब से ही इसका जन्म हुआ। दूसरे, इतने समय बाद सहसा उसकी स्त्री के गर्भ से सन्तान का जन्म हुआ, यह किसी भी प्रकार स्त्री का स्वाभाविक गुण नहीं हो सकता। तीसरे, उसी प्रकार घुटनों के बल डगमगाकर चलता है एवं बुआ को बुआ कहता है। यह सब लक्षण होने से भविष्य में जज होने की बात उसे अनेकों बार स्मरण हो आई।

तभी मालकिन के उस भीषण सन्देह की बात अचानक याद आई—'हाय, माँ के मन जान लिया था कि उसके बच्चे को किस ने

चुरा लिया है। तब, इतने दिनों तक शिशु के प्रति जो लापरवाही की थी, उसके लिए बड़ा अनुताप उपस्थित हो गया। शिशु को फिर बहुत चाहने लगा।

अब फेल्ना को राईचरण इस प्रकार मनुष्य बनाने लगा, जैसे वह बड़े घर का लड़का हो। जरी की टोपी लाया। मृत-स्त्री के गहने गला कर चूड़ी एवं लच्छे तैयार हुए। मुहल्ले के किसी लड़के के साथ उसे खेलने नहीं देता—रात-दिन स्वयं ही उसके खेल का एकमात्र साथी बन गया। मुहल्ले के लड़के सुअवसर पाकर उसे 'नवाब का बेटा' कहकर उपहास करते एवं गाँव के लोग राईचरण के इस प्रकार उन्मत्तवत् आचरण से आश्चर्यचकित हो गए।

फेल्ना की जब विद्याभ्यास की आयु हुई, तब राईचरण अपनी सब जमा-पूँजी बेच कर, बालक को कलकत्ते ले गया। वहाँ बड़े कष्ट से एक नौकरी ढूँढ़कर फेल्ना को विद्यालय में भेजा। स्वयं ज्यों-त्यों रह कर बच्चे को अच्छा खिलाता, अच्छा पहिनाता, अच्छी शिक्षा देने में त्रुटि नहीं करता। मन-हीमन कहता—'बच्चे! स्नेह के कारण मेरे घर में आए हो, अतः तुम्हारा कोई निरादर होगा, ऐसी बात नहीं है।'

इस प्रकार बारह वर्ष बीत गए। लड़का पढ़ने-लिखने में भला और देखने-सुनने में भी अच्छा, हृष्ट-पुष्ट उज्ज्वल श्यामवर्ण—केश विन्यास के प्रति विशेष जागरूक, मिजाज कुछ सुखी एवं शौकीन है। पिता को ठीक पिता की भाँति ही मन में नहीं समझता। कारण, राईचरण स्नेह में पिता और सेवा में नौकर जैसा था एवं उसका एक और भी दोष था—वह फेल्ना का पिता है, यह बात उसने सब लोगों से छिपा रक्खी थी। जिस छत्रावास में फेल्ना रहता था, वहाँ के अन्य छात्र गँवार राईचरण को लेकर सदैव कौतुक करते एवं पिता के परोक्ष में फेल्ना भी उस कौतुकालाप में योग नहीं देता था, यह नहीं कहा जा सकता। अस्तु; निरीह वात्सल्यभावी राईचरण को सभी छात्र बहुत स्नेह करते

एवं फेल्ना भी स्नेह करता, परन्तु पहले ही कहा जा चुका है, ठीक पिता की भाँति नहीं, उसमें कुछ अनुग्रह मिश्रित होता।

राईचरण वृद्ध हो चला। उसके मालिक काम-काज में सदैव दोष पकड़ते हैं। वास्तव में उसका शरीर भी शिथिल हो आया है, काम में भी वैसा मन नहीं लगा पाता, बार-बार भूल जाता है—परन्तु जो व्यक्ति पूरा वेतन देता है, वह बुढ़ापे का उज्र नहीं मानना चाहता। इधर राईचरण खेत आदि बेचकर जो नक़द रुपये इकट्ठे कर लाया था, वे भी समाप्त हो आए हैं। फेल्ना ने आजकल वस्त्राभूषण के अभाव को लेकर सदैव खटपट करना आरम्भ कर दिया है।

तृतीय परिच्छेद

एक दिन राईचरण अचानक काम (नौकरी) को जवाब देकर (छोड़कर) एवं फेल्ना को कुछ रुपये देकर बोला—"जरूरत आ पड़ी है, मैं कुछ दिनों के लिए देश जा रहा हूँ।" यह कहकर बरासात* जा पहुँचा। अनुकूल बाबू उन दिनों वहाँ मुन्सिफ थे।

अनुकूल के फिर दूसरी सन्तान नहीं हुई थी, गृहिणी इस समय भी उस पुत्र-शोक को अपने हृदय में पाले हुए थीं।

एक दिन संध्या के समय बाबू कचहरी से आकर विश्राम कर रहे थे एवं उनकी पत्नी एक सन्यासी के द्वारा सन्तान की कामना से एक बहुमूल्य ताबीज़ एवं आशीर्वाद खरीद रही थीं—इसी समय आँगन में शब्द हुआ—"जय हो माँ!"

बाबू ने जिज्ञासा की—"कौन है रे!"

राईचरण ने आकर प्रणाम करते हुए कहा—"मैं हूँ, राईचरण।"

वृद्ध को देखकर अनुकूल का हृदय आर्द्र हो उठा। उसकी वर्त्तमान-अवस्था के सम्बन्ध में सहस्रों प्रश्न एवं पुनः उसे अपने यहाँ नौकरी करने का प्रस्ताव किया।

---

* एक स्थान का नाम।

राईचरण ने म्लान-हास्य से कहा—"मालकिन को एक बार प्रणाम करना चाहता हूँ।"

अनुकूल उसे अपने साथ अन्तःपुर में लिवा ले गए। मालकिन ने राईचरण का वैसी प्रसन्नता से आदर नहीं किया—राईचरण ने बिना ऊपर की ओर देखे, हाथ जोड़ कर कहा—"स्वामिनी, माँ! मैं ही आपके बच्चे को चुरा कर ले गया था। पद्मा नहीं, और कोई भी नहीं, कृतघ्न अधम सब मैं ही—"

अनुकूल बोल उठे—"कहता क्या है रे। कहाँ है वह?"

"जी, मेरे ही पास है। मैं परसों ले आऊँगा।"

उस दिन रविवार था, कचहरी नहीं थी। प्रातःकाल से ही स्त्री-पुरुष दोनों मुँह उठाए राह देखते बैठे हुए थे। दस बजे के समय फेलना को साथ लेकर राईचरण आ उपस्थित हुआ।

अनुकूल की स्त्री कोई प्रश्न, कोई विचार न कर, उसे गोद में बैठा, उसे स्पर्श कर, उसे सूँघ कर, अतृप्त नेत्रों से उसका मुख देखती हुई, रोती-हँसती व्याकुल हो उठी। वास्तव में लड़का देखने में अच्छा—वेषभूषा, आकार-प्रकार में दरिद्रता का कोई भी लक्षण नहीं। मुख पर अत्यन्त प्रियदर्शन विनीत सलज्ज भाव था। देखते ही अनुकूल का हृदय भी अचानक उच्छ्वसित हो उठा।

तो भी उन्होंने अविचलितभाव धारण करके जिज्ञासा की—"कोई प्रमाण है?"

राईचरण ने कहा—"ऐसे काम का सबूत कैसे रह सकेगा? मैंने जो आपके लड़के को चुराया था, उसे केवल भगवान जानते हैं, पृथ्वी पर और कोई नहीं जानता।"

अनुकूल ने सोचकर स्थिर किया कि लड़के को पाते ही उनकी स्त्री ने जिस प्रकार आग्रहपूर्वक उसे अपना लिया है, तब प्रमाण-संग्रह

करने की चेष्टा करना युक्तियुक्त नहीं; कैसे भी हो, विश्वास करना ही अच्छा है। इसके अतिरिक्त, राईचरण ऐसे लड़के को और कहाँ से पाएगा ? और वृद्ध सेवक उन्हें अकारण ही धोखा क्यों देना चाहेगा ?

लड़के के साथ भी वार्त्तालाप करने पर ज्ञात हुआ कि वह बाल्य-काल से ही राईचरण के साथ है एवं राईचरण को वह पिता समझता रहा है, परन्तु राईचरण ने कभी भी पिता की भाँति व्यवहार नहीं किया, सदैव सेवक का भाव ही रक्खा है।

अनुकूल मन के सन्देह को दूर हटा कर बोले—"किन्तु राईचरण ! तू अब हम लोगों की परछाईं भी नहीं छू सकेगा।"

राईचरण ने हाथ जोड़ कर गद्‌गद् कण्ठ से कहा—"स्वामी ! वृद्ध आयु में कहाँ जाऊँगा ?"

मालिकिन बोलीं—"अच्छा; रहो। मेरे बच्चे का कल्याण हो। तुम्हें मैंने माफ़ कर दिया।"

न्यायपरायण अनुकूल ने कहा—"जो काम किया है, उसे माफ नहीं किया जा सकता।"

राईचरण ने अनुकूल के पाँव पकड़ते हुए कहा—"मैंने नहीं किया, ईश्वर ने किया था।"

अपना पाप ईश्वर के कन्धे पर डालने की चेष्टा करते देख अनुकूल और भी कड़वे बन कर बोले—"जिसने ऐसे विश्वासघात का काम किया उस पर फिर विश्वास करना ठीक नहीं है।"

राईचरण ने मालिक के पाँव छोड़ते हुए कहा—"वह मैं नहीं हूँ, मालिक।"

"तो कौन है ?"

"मेरा अदृष्ट।"

"परन्तु ऐसी कैफ़ियत से किसी शिक्षित व्यक्ति को सन्तोष नहीं हो सकता।"

राईचरण बोला—"पृथ्वी पर मेरा और कोई नहीं है।"

फेल्ना ने जब देखा, वह मुन्सिफ की सन्तान है; राईचरण उसे इतने दिनों तक चुराकर अपना लड़का कहकर अपमानित करता रहा है, तब उसे मन-ही-मन कुछ क्रोध हो आया। परन्तु तो भी उदारभाव से पिता से कहा—"पिताजी! उसे माफ कर दीजिए। घर में मत रहने दो, उसे कुछ रुपये महीने की वृत्ति बाँध दो।"

इसके उपरान्त राईचरण ने कोई बात न कह कर एक बार पुत्र के मुख का निरीक्षण किया; सबको प्रणाम की; तदुपरान्त दूसरे दरवाजे से बाहर निकल कर पृथ्वी के असंख्य लोगों में जा मिला। महीने के अन्त में अनुकूल ने जब उसके गांव के पते पर कुछ वृत्ति भेजी तब वे रुपये लौट आए। वहाँ कोई नही था।

प्राणमन

१

मेरी खिड़की के सामने लाल मिट्टी की सड़क है। उस पर से बोझ से लदी हुई बैल-गाड़ियाँ चलती हैं, सन्थाल स्त्रियाँ घास के गट्ठर सिर पर रक्खे हुए हाट को जाती हैं, सन्ध्या के समय कलहास्य करती हुई घर लौटती हैं।

परन्तु मनुष्य के चलने-फिरने वाले मार्ग की ओर आज मेरा मन नहीं है।

जीवन का जो भाग अस्थिर, अनेकों भावनाओं से उद्विग्न, अनेकों चेष्टाओं से चञ्चल है, वह आज ढँक गया है। शरीर आज रुग्ण, मन आज निरासक्त (नीरस) है।

लहरों वाला समुद्र बाहरी भाग का समुद्र है; भीतरी भाग में जहाँ पृथ्वी की गंभीर गर्भ-शय्या है, लहरें वहाँ की बात को गड़बड़ी में डाल कर भुला देती हैं। लहरें जब थमती हैं, तब समुद्र अपने अगोचर के साथ अगोचर की, गहरे-तल के साथ ऊपरीतल की अखण्ड एकता में स्तब्ध होकर विराजता है।

इसी प्रकार मेरे सचेष्ट प्राण ने जब छुट्टी पाई, तभी उस गंभीर प्राण के बीच मैंने स्थान पाया, जहाँ विश्व का आदिकालीन लीला-क्षेत्र है।

मार्ग पर चलने वाला पथिक जब तक रहा, उतने दिनों तक मार्ग के किनारे वाले उस वटवृक्ष की ओर देखने का समय नहीं पाया; आज मार्ग छोड़ कर खिड़की पर आया हूँ. आज उसके साथ मुकाबिला शुरू हुआ है।

मेरे मुँह की ओर देख-देखकर क्षण-क्षण पर वह जैसे अस्थिर हो उठता है। जैसे कहना चाहता है, 'समझ में नहीं आता ?'

मैं सान्त्वना देकर कहता हूँ—'समझ गया। सब समझ गया। तुम ऐसे व्याकुल मत होओ।'

कुछ क्षण के लिए फिर शान्त हो गया। फिर देखा, बहुत व्यस्त हो उठा, फिर वही खर्खर्, झर्झर् झलमल्।

फिर उसे ठण्डा करके बोला—'हाँ, हाँ, वही बात है; मैं तुम्हारे ही खेल का साथी हूँ, लाखों-हजारों वर्षों से इस मिट्टी के खेल-घर में मैंने भी अँजलि भर-भर कर तुम्हारी ही भाँति सूर्यालोक का पान किया है, पृथ्वी के स्तन्य-रस से मैं भी तुम्हारा अंशी (हिस्सेदार) था।'

तब उसके भीतर से हठात् वायु का शब्द सुनता, वह कहता रहता, 'हाँ, हाँ, हाँ।'

जो भाषा रक्त की मर्मरध्वनि से मेरे हृत्पिण्ड में बजती है, जो प्रकाश-अन्धकार की निःशब्द आवर्तनध्वनि है, वही भाषा उसके पत्र-मर्मर से मेरे पास आ पहुँचती है। वही भाषा विश्व-जगत् की सरकारी भाषा है।

उसकी मूलवाणी होती है, 'हूँ, हूँ ! मैं हूँ, हम हैं !'

वह बड़ी खुशी की बात है। उस खुशी से विश्व के अणु-परमाणु खर्खर् करके काँपते हैं।

उस वटवृक्ष के साथ मेरी आज उसी एक भाषा में वही एक खुशी की बात चल रही है।

वह मुझसे कहता—'तुम हो न ?'

मैं उत्तर देकर कहता हूँ, 'हूँ, हे मित्र !'

इस प्रकार 'हूँ' और 'हूँ' से एकताल में ताली बज रही है।

२

उस वटवृक्ष के साथ जब मेरा आलाप शुरू हुआ, तब वसन्त से उसके पत्ते कच्चे थे; उसकी अनेक सँधों से आकाश से भागा हुआ प्रकाश घास के ऊपर आकर पृथ्वी की छाया के साथ चुपचाप गलबाँही डाले रहता।

उसके पश्चात् आषाढ़ की वर्षा उतरी; उसके पत्तों का रंग बादलों की भाँति गम्भीर (गहरा) हो आया। आज वही पत्तों की राशि प्रवीणों की परिपक्व बुद्धि की भाँति निविड़ है, उसकी किसी सँध से बाहरी प्रकाश प्रवेश करने का मार्ग नहीं पाता। उस समय वृक्ष था गरीब की लड़की की भाँति, आज वह धनी घर की गृहिणी है, जैसे पर्याप्त परितृप्ति का चेहरा हो।

आज सवेरे वह अपने मरकतमणि के बीस लड़ी वाले हार को चमकाते हुए मुझ से बोला, 'मस्तक के ऊपर इस तरह ईंट-पत्थर रखे हुए क्यों बैठे हो ? मेरी भाँति एकदम अच्छी तरह बाहर आओ न !'

मैं बोला, 'मनुष्य को भीतर-बाहर दोनों ओर से बचकर चलना होता है।'

वृक्ष झुकझुकाकर बोल उठा, 'समझ नहीं सका।'

मैं बोला, 'हमारे दो संसार हैं। भीतरी और बाहरी।'

वृक्ष बोला; 'सर्वनाश ! भीतरी कहाँ है ?'

'मेरे अपने ही घेरे में।'

'वहाँ करते क्या हो ?'

'सृष्टि करता हूँ।'

'सृष्टि, और घेरे के भीतर ! तुम्हारी बात समझ में आने योग्य नहीं है।'

मैं बोला, 'जैसे किनारों के बीच नदी बँधी रहती है, वैसे ही घेरे में घिरी रहती है सृष्टि। एक ही वस्तु घेरे में अटक कर कहीं हीरे का टुकड़ा, कहीं वटवृक्ष हो जाती है।'

वृक्ष बोला, 'तुम्हारा घेरा कैसा है; सुनूँ तो ?'

मैं बोला, 'वह मेरा मन है। उसमें जो अटक जाता है, वही अनेकों प्रकार की सृष्टि बन जाता है।'

वृक्ष बोला, 'तुम्हारी घेरे में घिरी सृष्टि हमारे चन्द्र-सूर्य के समक्ष कितनी-सी दिखाई देती है ?'

मैं बोला; 'चन्द्र-सूर्य से तो उसे नापा नहीं जा सकता। चन्द्र-सूर्य तो बाहरी-वस्तु हैं।'

'तब उसे किस से नापोगे ?'

'सुख से, विशेष कर दुःख से।'

वृक्ष बोला, 'यह पुरवैया हवा मेरे कानों में आकर बात कहती है, मेरे प्राणों में उसकी प्रेरणा जग उठती है। परन्तु, तुम जाने किसकी बात कहते हो, मैं कुछ भी नहीं समझ सका।'

मैं बोला, 'समझाऊँ किस तरह ? तुम्हारी उस पुरवैया हवा को हमने अपने घेरे में रखकर वीणा के तार में जैसे ही बांध दिया, वैसे ही

वह हवा एक सृष्टि से एकदम एक-अन्य सृष्टि में जा पहुँची ! यह सृष्टि किस आकाश में स्थान पाती है, किस विराट्-चित्त के स्मरणाकाश में, उसे मैं भी ठीक नहीं जानता। लगता है, जैसे वेदना का कोई आकाश है। वह आकाश नापने का आकाश नहीं है।'

'और उसका काल ?'

'उसका काल भी घटना का काल नहीं, वेदना का काल है। इसी से वह काल संख्या से परे है।'

'दो आकाश, दो कालों के जीव हो तुम, तुम अद्भुत हो ! तुम्हारे भीतर की बात कुछ भी नहीं समझा।'

'नहीं समझ सके ?'

'मेरी बाहरी बात को तुम्हीं क्या ठीक समझते हो ?'

'तुम्हारी बाहरी बात मेरे भीतर आकर जो बात बन जाती है, उसे यदि समझना कहो तो वह समझना है, यदि गीत कहो तो गीत, कल्पना कहो तो कल्पना है।'

३

वृक्ष अपनी समस्त डालियों को झुका कर मुझ से बोला, 'जरा ठहरो। तुम बहुत अधिक सोचते हो, फिर बहुत अधिक बकते हो।'

सुनकर मेरे मन को लगा, 'यह बात सच है।'

मैं बोला, 'चुप रहने के लिए ही तुम्हारे पास आता हूँ, परन्तु भाग्य-दोष से चुप रहते-रहते भी बकता हूँ, जैसे कोई-कोई सोते-सोते भी चलता है।'

कागज-पेन्सिल को उठाकर फेंक दिया, रह गया उनकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखकर। उसकी चिकनी पत्तियाँ उस्ताद की उँगलियों की भाँति आलोक-वीणा पर द्रुतताल से चोट करने लगा।

सहसा मेरा मन कह उठा, 'यह तुम जो देख रहे हो और यह मैं जो सोच रहा हूँ; इसके बीच समन्वय कहाँ है ?'

मैं उसे धमका कर बोला, 'फिर तुम्हारा प्रश्न ? चुप रहो।'

चुप बना रहा, एकटक देखने लगा। समय बीत गया।

वृक्ष बोला, 'क्यों, सब समझ गये ?'

मैं बोला, 'समझ गया।'

४

वह दिन तो चुपचाप ही कट गया।

दूसरे दिन मेरे मन ने मुझसे पूछा, 'कल वृक्ष की ओर देखते-देखते अचानक बोल उठे थे, समझ गया, क्या समझ गये बताओ तो।'

मैं बोला, 'अपने ही भीतर मनुष्य के प्राण अनेकों चिन्ताओं में घुल गए हैं। इसलिए, प्राणों के विशुद्ध रूप को देखना हो तो देखना चाहिए उस घास की ओर, उस वृक्ष की ओर।'

''किस तरह देखा ?'

''देखा, इन प्राणों में अपने-आप में कैसा आनन्द है। स्वयं को लेकर पत्ते-पत्ते पर, फूल-फूल पर, फल-फल पर, कितने यत्न से उसने कितने नक्शों की नक्काशी की है, कितने रंग लगाए हैं, कितनी गन्ध, कितना रस ! इसीलिए उस वटवृक्ष की ओर देखते हुए मन-ही-मन कह रहा था—'हे वनस्पति, जन्म से ही पृथ्वी पर प्रथम-प्राण जो आनन्द-ध्वनि कर उठा था, वह ध्वनि तुम्हारी शाखा-शाखा में है। वह आदियुग की सरल हँसी तुम्हारे पत्ते-पत्ते पर झलमला रही है। मेरे भीतर वही प्रथम-प्राण आज चञ्चल हो उठा है। भावना के घेरे के भीतर वह बन्दी होकर बैठा हुआ था; तुमने उसे पुकार कर कहा है, 'ओरे, आ न रे,

प्रकाश के बीच, हवा के बीच; और मेरी ही भाँति ले आ अपने रूप की तूलिका, रंग की कटोरी, रस का प्याला।'

मन मेरा क्षण भर को मौन हो रहा। उसके बाद कुछ उदास होकर बोला, 'तुम इस प्राण की बात को लेकर ही कुछ बड़बड़ाते रहते हो, मैं जो सब उपकरण इकट्ठे कर रहा हूँ, उनकी बात इस प्रकार बना-बना कर क्यों नहीं कहते?'

उसकी बात और क्या कहूँ! वह स्वयं ही अपनी टङ्कार, झङ्कार, हुंकार, झंकार से आकाश को कँपाये हुए है। उसके भार से, उसकी दुरूहता से, उसके जञ्जाल से पृथ्वी का वक्ष व्यथित हो उठा है। सोचकर नहीं जान सका, इसका अन्त कहाँ है। थाक (ढेर) के ऊपर और कितनी थाक उठेंगीं? गाँठ के ऊपर और कितनी गाँठें पड़ेंगीं? इस प्रश्न का जवाब था उस वृक्ष के पत्तों में।'

''अच्छा? क्या जवाब था सुनूँ।'

'वे कहते थे, प्राण जब तक नहीं है, तब तक सभी केवल स्तूप, सभी केवल भार हैं। प्राण का स्पर्श लगने मात्र से ही उपकरण के साथ उपकरण स्वयं ही मिल कर अखण्ड सुन्दर हो उठते हैं। उस सुन्दर को ही देखो वनबिहारी! उसी की वंशी तो बज रही है वट की छाया में।'

५

तब कब की कौन पिछली रात्रि थी।

प्राण ने अपनी सुप्ति-शैय्या छोड़ दी; वह पहले-पहल राह पर बाहर निकला अज्ञात के उद्देश्य से, अचेतन जगत के पारावार के बीच।

उस समय भी उसकी देह में थकावट नहीं, मन में चिन्ता नहीं; उसकी राजपुत्र-सी पोशाक में नहीं लगी थी धूल, नहीं था कोई छेद।

उस अक्लान्त, निश्चिन्त, अम्लान प्राण को देखा इस आषाढ़ के सवेरे में, उस वट वृक्ष में। वह अपनी शाखाओं को झुका कर मुझसे बोला, 'नमस्कार।'

मैं बोला, 'राजपुत्र, मरु-दैत्यों के साथ लड़ाई कैसी चल रही है, कहो तो।'

वह बोला, 'ठीक चल रही है; एक बार चारों ओर ताक कर देखो न।'

ताक कर देखा, उत्तर का मैदान घास से ढँका, पूर्व का मैदान धान के अँकुरों से पटा, दक्षिण में बाँध के किनारे ताड़ वृक्ष की पंक्ति, पश्चिम में शाल, ताड़ महुआ, आम, जामुन, खजूर ऐसे जटिल थे कि दिगन्त दिखाई नहीं देता।

मैं बोला, 'राजपुत्र, धन्य हो तुम। तुम कोमल हो, तुम किशोर हो, और दैत्य जैसे प्रवीण हैं वैसे ही कठोर हैं। तुम छोटे हो, तुम्हारा तूणीर छोटा है, तुम्हारा तीर छोटा है और वे हैं विपुल, उनका वर्म मोटा है, उनकी गदा भारी है। तो भी देखता हूँ, दिशा-दिशाओं में तुम्हारी ध्वजा उड़ रही है, दैत्यों की पीठ पर तुम पाँव रक्खे हो—पत्थर मान रहा है, हार, धूल दस्तखत कर रही है।

वट बोला, 'तुमने इतना समारोह कहाँ देखा?'

मैं बोला, 'तुम्हारी लड़ाई को देखता हूँ शान्ति के रूप में, तुम्हारे कर्म को देखता हूँ विश्राम के वेष में, तुम्हारी जय को देखता हूँ नम्रता की मूर्त्ति में। इसीलिए तो तुम्हारी छाया में साधक आकर बैठे हैं उस सहज-युद्ध में विजय प्राप्ति के मन्त्र और उस सहज अधिकार की सन्धि सीखने के लिए। प्राण किस प्रकार काम करते हैं, जङ्गल-जङ्गल में उसी की पाठशाला खुली हुई हैं। इसी से, जो क्लान्त हैं, वे तुम्हारी छाया में आते हैं, जो आर्त्त हैं, वे तुम्हारी वाणी को ढूँढ़ते हैं।'

मेरी स्तुति सुनकर बट के भीतर का प्राणपुरुष शायद खुश होगया, वह बोल उठा, 'मैं निकला हूँ मरु-दैत्यों के साथ लड़ाई करने, परन्तु मेरा एक छोटा भाई है, वह किस लड़ाई में कहाँ चला गया है, मुझे अब कोई टोह नहीं मिल रही। कुछ क्षण पहले उसी की बात क्या तुमने कही थी ?'

'हाँ, उसी को हमने नाम दिया है—मन।'

'वह मेरी अपेक्षा चञ्चल है। किसी प्रकार उसे सन्तोष नहीं। उस अशान्ति की खबर मुझे दे सकते हो ?'

मैं बोला, 'कुछ-कुछ दे सकता हूँ। तुम लड़ रहे हो बचने (जीने) के लिए, वह लड़ रहा है पाने के लिए, और भी दूर एक और लड़ाई चल रही है छोड़ने (त्यागने) के लिए। तुम्हारी लड़ाई अचेतन के साथ है, उसकी लड़ाई अभाव के साथ है, एक और लड़ाई है सञ्चय के साथ। लड़ाई जटिल हो उठी है, व्यूह के भीतर जो प्रवेश करता है, व्यूह से निकलने का मार्ग उसे ढूँढ़े नहीं मिलता। हार-जीत अनिश्चित होने से चक्कर में पड़ जाता है। इस द्विविधा के बीच तुम्हारी वह हरी पताका योद्धाओं को आश्वासन दे रही है। कहती है, 'जय, प्राणों की जय!' गीत की तान बढ़ती ही जा रही है, किस सप्तक से किस सप्तक में चढ़ गई, इसका ठिकाना नहीं है। इस स्वर-सङ्कट के बीच तुम्हारा तँबूरा सरल तार से कह रहा है, 'भय नहीं, भय नहीं।' कहता है, 'इसी मूल स्वर को तो मैंने बाँध रक्खा है, यही आदि प्राणों का स्वर है। सभी उन्मत्त तानें इस स्वर से सुन्दर के स्थायी में आ मिलेंगी, आनन्द के गीत में सम्पूर्ण पावना, सम्पूर्ण देना फूल की भाँति खिल उठेगा, फल की भाँति फल उठेगा।'
